जापान

भारती

अक १/२ विक्रम संवत् २०५२ जनवरी/फरवरी १९९६

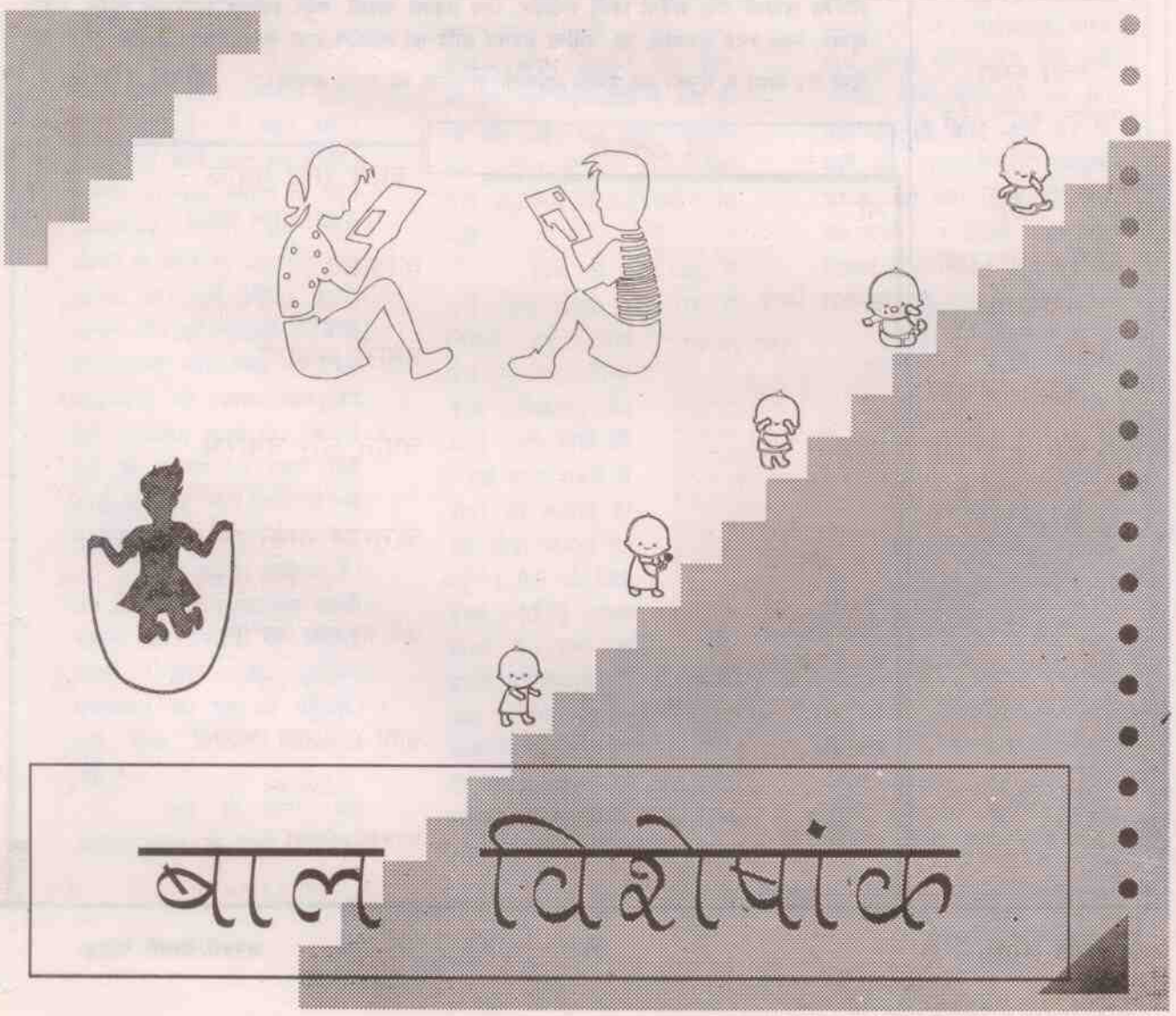

बाल विशेषांक

आमंत्रित संपादक
ओम्प्रकाश सिंहल

संपादक
सौरभ सिंघल

संपादक मंडल
अखिल मित्तल
রন্জান গুপ্ত
(रंजन गुप्ता)
रंजन कुमार
सुशील कुमार जैन

पता
5-12-9 दाईसान एबातो
बिल्डिंग,
उएनो, ताइतो-कू
तोक्यो 110

फोन/फैक्स/ई-मेल

सौरभ : 3587-3617
(फोन/फैक्स)
रंजन : 3473-6043
(फोन/फैक्स)
ranjan@twics.com

सुशील : 3832-1641

রন্জান গুপ্ত 3799-3065

जब मैं छोटा बच्चा था तब हर रोज़ रात को सोने से पहले अपनी दादी से कहानियाँ सुना करता था। हर रोज कहानियाँ सुना करता था। हर रोज कहानियाँ सुनने पर भी मन अघाता न था। इन कहानियों ने मेरे मन में आस्था, विश्वास, श्रद्धा, प्रेम आदि सद्गुणों के बीज बोए। इन सद्गुणों ने हमेशा मेरा मार्गदर्शन किया। मीठी वाणी का महत्त्व बतलाया। परिश्रम का पाठ पढाया। निराशा की धूल झाड़ कर आगे बढ़ते रहने का साहस दिया। लेकिन आज के बच्चों को अपनी दादी या नानी से कहानियाँ सुनने की सुविधा नहीं रही - चाहे वे स्वदेश में रहते हों या परदेस में। इसलिए आज इस दायित्व का निर्वाह पत्र-पत्रिकाएँ करती हैं। जो बच्चे परदेस में रहने के कारण अपनी मातृभाषा नहीं पढ़ पाते उनके माता-पिता पत्र पत्रिकाओं में छपी कहानियाँ पढ़ कर सुनाते हैं। इस प्रकार वे अपने बच्चों को अपनी जड़ों से जोड़े रखने का काम करते हैं।

'जापान भारती' का लक्ष्य अप्रवासी भारतीयों को अपनी जड़ों से जोड़े रखना है। 'बाल विशेषांक' का प्रकाशन हमने इसी लक्ष्य को साधने के लिए किया है। इस अंक का सम्पादन हिन्दी बाल–साहित्य के अग्रणी लेखक **डॉ० ओम्प्रकाश सिंहल** ने किया है। उन्होंने इस अंक के लिए हिन्दी बाल साहित्य के शीर्षस्थ लेखकों यथा **सर्वश्री विष्णु प्रभाकर, जय प्रकाश भारती, मधुर शास्त्री, अमरनाथ शुक्ल, देवेन्द्र कुमार, स्व० स्नेह अग्रवाल, डॉ. रवीन्द्र दरगन** आदि का सहयोग प्राप्त करके हमारा उत्साह दुगुना कर दिया है। आशा है उनका यह प्रयास अप्रवासी भारतीयों को पसंद आएगा।

सौरभ सिंघल

इस अंक में

माँ
जयप्रकाश भारती ३

सच्चा मित्र
विष्णु प्रभाकर ६

अनोखी शर्त
माधुरी शास्त्री ७

मेरा खिलौना
देवेन्द्र कुमार ८

अपना घर
ओम्प्रकाश सिंहल ११

मुस्काया सूरज
स्व. स्नेह अग्रवाल १२

बेसुरी बाँसुरी
डॉ. रवीन्द्र दरगन १३

बदल गई बुद्धि
अमरनाथ शुक्ल १५

हमारे राष्ट्र प्रतीक
डॉ. सरला चौधरी १७

कविताएँ
डॉ. रमेश कौशिक १९

हमारी आशाएँ
सुजीत सराफ २१

वर्षांत और वर्षारंभ
मिवाको कोएजुका २४

ऋतुराज वसंत
डॉ. शशि तिवारी २६

এই না হলে জাপান
গীতা রায় २९

রান্না : হেঁসেল থেকে
গীতা বর ३१

খাদক একাল
কল্যাণ দাশগুপ্ত ३२

माँ

□ जयप्रकाश भारती
संपादक, बंदन

उत्तर भारत का प्रसिद्ध मेला है नौचंदी। यह मेरठ में लगता है। सौ साल से अधिक हो गए इस मेले को। पहले तो केवल दस दिन तक चलता था, अब

बीस-बाइस दिन चलता है। पुरानी बात है। मैं बहुत छोटा था, शायद सात साल का बच्चा। नौचंदी का मेला लगता तो रोज गहमागहमी रहती। हम जिस मोहल्ले में रहते थे, वह सेठों का मोहल्ला था। सभी परिवार काफी सम्पन्न थे। पूरे मौहल्ले के बच्चे अपने-अपने माता-पिता या बड़े भाई-बहनों के साथ शाम को मेले में जाया करते थे। नौचंदी मेले के अवसर पर हमारे यहाँ कोई न कोई नाते-रिश्तेदार भी मेला देखने आ जाया करते थे।

मेरे पापा वकील हैं। उन दिनों उनकी वकालत खासी चलती थी। कोर्ट से लौटते, उससे पहले ही ग्रामीण मुवक्किल घर पर आ पहुँचते। मुझे मेला दिखाने कौन ले जाता!

शाम के समय जब अड़ोस-पड़ोस के बच्चे सज-धज कर मेले में जाते तो मैं उन्हें टुकुर-टुकुर ताका करता था। अक्सर बहुत उदास हो जाता था। एक दिन माँ ने मौका देखकर पापा से सिफारिश की कि लड़के को मेला दिखा लाओ। बच्चा है, इसका मन भी हुमकता है। उस दिन पापा कुछ कम व्यस्त थे। उन्होंने हामी भर दी।

कोर्ट से लौटकर वह स्नान-ध्यान किया करते, फिर भोजन करने बैठते। उस दिन भी इस सब कार्यवाही में रात के नौ बज गए। मेरे लिए एक-एक पल कठिन हो रहा था - पता नहीं हम मेले में जा सकेंगे या नहीं।

खैर, नौ बजे पापा ने मुझे साथ लिया और घर से निकल पड़े। उस उम्र में उन दिनों मेला देखने की कैसी उमंग होती थी - यह भला शब्दों में बाँधा जा सकता है! हम दोनों सड़क पर पहुँचे। मेले के लिए इक्के (ताँगे) चला करते थे। हम एक इक्के पर सवार हो गए। उसमें चार आदमी पहले से बैठे थे। पापा किसी तरह बैठने की जगह पा गए। बालक को उन दिनों फालतू की सवारी माना जाता था। इक्केवाला शायद आधा किराया लेता था। मुझे किसी तरह उकड़ू होकर बैठना पड़ा। इक्का चला तो मेरा घुटना इक्के से रगड़ खाने लगा किन्तु मैंने उसकी परवाह न की। हाँ, वहाँ की खाल छिल गई, कई दिन टीसता रहा।

कुछ ही देर में हम मेले में पहुँच गए। मुख्य द्वार से पहले कई तरह के हिंडोले, झूले तथा खेल अपने-अपने पंडाल लगाए हुए थे। सर्कस के बाहर खूब रोशनी थी। लंगूर और कई जोकर उछल-कूद कर रहे थे। भीड़ का तो कोई ओर-छोर ही नहीं था। पापा ने मेरी अँगुली पकड़ रखी थी। किसी भी खेल को उन्होंने न देखने दिया और टिकट लेकर अंदर जाने का तो प्रश्न ही नहीं था।

हम मुख्य मेले के एक बाजार से झटपट गुजरते हुए एकदम निर्जन जैसे इलाके में पहुँचे। वहाँ छोटा-सा मंदिर था - चंडी देवी का पुराना मंदिर। लेकिन उन्हीं दिनों नया मंदिर

भी बन गया था जिस पर खास तौर से सजावट और चहल-पहल रहती थी। पुराने मंदिर में इक्का-दुक्का ही कोई जाता था। वहाँ चंडी के दर्शन करने के बाद हम मेले में आ गए। मुझे रह-रहकर सर्कस का ध्यान आ रहा था, किन्तु मन मारना पड़ा।

तभी पापा के कोई परिचित मिल गए। मुझे हिदायत हुई कि उन्हें नमस्कार करूँ। खैर, बड़ों का आदर तो होना ही चाहिए। वह कोई मुनीम जी थे। मुनीम जी पापा के पुराने दोस्त रहे होंगे। वह कम से कम पंद्रह मिनट इधर-उधर की चर्चा करते रहे। मुझे लगता रहा कि मुनीम जी को मेला देखने में खास दिलचस्पी नहीं थी। खैर, किसी तरह मुनीम जी के बंधन से छुटकारा मिला। अब थोड़ा और आगे बढ़े। एक चौराहे पर पापा के कोई अन्य वकील मित्र मिल गए। वकील साहब स्वभाव से मज़ाकिया थे। वह मुझ से भी कई तरह के सवाल करते रहे। पूछने लगे - "क्यों भई, क्या-क्या खाया-पिया, क्या खरीदा मेले में।" मेरे पास चुप रहने के अलावा कोई उत्तर न था। वकील साहब चलते हुए बोले - "बेटा शरमीला है तुम्हारा।"

मेला क्या हुआ, मुलाकातियों का संगम हुआ। शायद छह-सात ऐसे परिचितों को झेलना ही पड़ा। रात के साढ़े दस बज चुके थे। भीड़ कम हो गई थी। मेला ढलाव पर था। हम भी लौट पड़े। वही ताँगे की तंग सवारी। लौट के बुद्धू घर को आए।

अम्मा तो हमारी राह देख रही थीं। उन्होंने घर में घुसते ही उत्साह से पूछा - "देख आए बेटा मेला, क्या-क्या देखा, क्या लाए?" मैं एकदम चुप्प। माँ कुछ हैरान-परेशान हुई। मेले से लौटने पर गुमसुम, आखिर क्यों? उन्होंने फिर पूछा -"क्या हुआ बेटा, क्या खाया-पिया?" मैं फिर भी चुप। अब वह पापा की ओर मुखातिब हुई - "आपने इसे डाँटा-डपटा है क्या?"

पापा झट से बोले - "नहीं-नहीं, मैं क्यों डाँटने लगा भला?"

अब तो माँ का और भी प्यार उमड़ आया। मुझे बाँहों में लेती हुई बोली - "क्यों बेटा, क्या तुमने कुछ नहीं खरीदा?" मेरी रुलाई फूट पड़ी। पापा अपनी सफाई देते हुए बोले - "इसने कुछ दिलाने को कहा ही नहीं।"

माँ काफी नाराज हुई। कहने लगी - "तुम इसे मेले में ले गए थे या मातमपुर्सी में? तुम्हें कुछ नहीं सूझा।"

माँ ने कहा - "अब मैं तुम्हें मेले में ले जाऊँगी। तुम जो कहोगे वह दिलवाऊँगी।" उन्होंने मेरे बुझे मन में फिर से एक दीपक जला दिया। मैं इस आशा में सोया कि कल दुबारा मेले में मनचाही खरीदारी हो सकेगी।

लेकिन दूसरे दिन माँ मुझे मेला दिखाने नहीं ले जा सकीं। पड़ोस में कोई गमी हो गई थी।

तीसरे दिन माँ ने सवेरे ही कह दिया कि आज दोपहर बाद वह मुझे और मेरी दो बहनों को मेला दिखाकर लाएंगी। उस दिन स्कूल में बार-बार यही ख्याल आता रहा कि कब छुट्टी हो, कब घर पहुँच जाऊँ। लगा दिन बहुत लम्बा हो गया है। आखिर छुट्टी हुई। घर पहुँचते

"अब मैं तुम्हें मेले में ले जाऊँगी। तुम जो कहोगे वह दिलवाऊँगी।" उन्होंने मेरे बुझे मन में फिर से एक दीपक जला दिया।

ही मैंने माँ को दिलजगाई की कि मेला ले चलोगी ना। माँ की आदत थी कि हर काम में रुचि और उत्साह दिखातीं। उन्होंने मुझसे कहा कि हम दो बजे मेले के लिए चल देंगे।

दो बजे भी नहीं थे कि माँ और मेरी दोनों बहनें तैयार हो चुकीं थीं। हमारी मिसरानी जिसे हम "दादी" कहा करते थे, वह भी साथ जा रही थीं।

हम पाँचों घर से निकले। माँ ने दादी से कहा कि वह एक सालिम ताँगा कर लें यानी उसमें ताँगेवाला कोई अन्य सवारी न बैठाए। ऐसा ही हुआ। हम तीन बच्चे आगे की सीट पर ऐसे बैठे मानों महाराजा के सिंहासन पर विराजे हों। पीछे की सीट पर अम्मा और दादी बैठ गईं। मुझे याद आया कि पापा कैसी फिचफिच में ताँगे में ले गए थे। मैंने कई बार अपने छिले हुए घुटने पर हाथ फेरा।

हमारा ताँगा अच्छी चाल से चला जा रहा था। आसमान में सुहानी धूप थी। हवा भी चल रही थी। ताँगा यों ही दो-चार घंटे चलता रहता तो अच्छा होता लेकिन अचानक थोड़े झटके से घोड़ा रुका। मेला आ गया था। हम नीचे उतरे। सामने ही झूला था। माँ ने पूछा - "कौन-कौन से झूले में बैठेगा।" मेरी बहनें बहुत उत्सुक थीं। झट दादी ने तीन टिकट लिए और उनके साथ झूले में बैठ गई। मुझे झूले में बैठने में डर लगता था। माँ मुझे लिए पास में खड़ी रहीं। माँ ने गंडेरी खरीद लीं। हम दोनों खड़े-खड़े गंडेरियां चूसते रहे।

झूले के चक्कर खत्म हो गए तो माँ एक बढ़िया खोमचे वाले के पास ले गई। चाट में जिसे जो पसंद था, वही पत्ता उसने बनवाया। दो-तीन पत्ते खाने पर भी रोक-टोक नहीं थी। अब हम नौचंदी के मुख्य बाजार में जा पहुँचे थे। वहाँ घूमते रहे, मनचाही चीजें खरीदते रहे। खेल तमाशे भी देखे। दूर-दूर से आई दुकानें देखीं। माँ कम पढ़ी-लिखी थीं, फिर भी उन्होंने 'सत्यनारायण की कथा' पुस्तक खरीदी। हम बच्चों के लिए भी रंगीन किताबें लीं।

शाम ढलने लगी थी। माँ ने कहा कि अब लौटना चाहिए। नौचंदी के मेले में देसी घी का हलुवा-परौंठा विशेष रूप से मिलता है। एक परौंठा इतना बड़ा होता है कि आठ-दस आदमी उसे खा पाएँ। आसपास उसकी सुगंध फैली हुई थी। मैंने माँ से कहा - "तुमने पापा के लिए तो कुछ लिया ही नहीं।"

माँ कुछ झुंझलाई सी बोलीं - "वो हमारे लिए मेले से क्या ले गए थे?" पर दूसरे ही क्षण वह सामने की दुकान की ओर बढ़ीं। उन्होंने गर्मागर्म हलवा-परौंठा एक डिब्बे में बँधवा लिया।

शाम हो गई थी। मेले में भीड़ बढ़ गई थी। हमने वापसी के लिए ताँगा पकड़ लिया।

हमारा ताँगा अच्छी चाल से चला जा रहा था। आसमान में सुहानी धूप थी। हवा भी चल रही थी। ताँगा यों ही दो-चार घंटे चलता रहता तो अच्छा होता लेकिन अचानक थोड़े झटके से घोड़ा रुका।

सच्चा मित्र

▫ विष्णु प्रभाकर

भारत का एक नगर है - कन्नौज। कभी वहाँ चँद्रापीड़ नाम का राजा राज्य करता था। उसका एक सेवक था। नाम था धवलमुख। वह घर में कभी खाना न खाता। हमेशा घर से बाहर ही भोजन करता। एक दिन उसकी पत्नी ने उससे पूछा, "आपको हर रोज़ खाना कौन खिलाता है?"

धवलमुख ने उत्तर दिया, "तुम नहीं जानती, मेरे दो मित्र हैं। एक का नाम है कल्याणवर्मा। वह मुझे खूब पेट भरकर बढ़िया-बढ़िया भोजन करवाता है। दूसरे दोस्त का नाम है - वीरबाहु। वह हमेशा मेरे लिए प्राण देने को तैयार रहता है।"

पत्नी ने यह सुनकर कहा, "बड़े अचरज की बात है। आपने कभी मुझे तो बताया ही नहीं। न कभी उनसे मिलवाया। मैं कल अवश्य आपके साथ चलूँगी।"

धवलमुख ने कहा, "ज़रूर चलना।"

अगले दिन वह धवलमुख अपनी पत्नी को साथ लेकर अपने मित्र कल्याण वर्मा के घर गया। अपने मित्र की पत्नी को देखकर कल्याण वर्मा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने दोनों का खूब स्वागत किया। पत्नी बहुत प्रसन्न हुई।

दूसरे दिन वे दोनों वीरबाहु के घर गए। वे जब वहाँ पहुँचे, तो वीरबाहु पासे खेल रहा था। उसने अपने मित्र और उसकी पत्नी को देखा, उनके कुशल समाचार पूछे, और फिर पहले की तरह खेलने लगा।

थोड़ी देर में धवलमुख अपनी पत्नी के साथ घर लौट आया। पत्नी ने कहा, "आपके मित्र कल्याणवर्मा ने हमारा कैसा आदर-सत्कार किया। लेकिन वीरबाहु ने तो केवल कुशल समाचार ही पूछा। वह कैसे तुम्हारा बड़ा मित्र हुआ?"

धवलमुख मुस्कराया, बोला, "तुम उसकी परीक्षा लेना चाहती हो। ऐसा करो, तुम कल अकेली उन दोनों के पास जाओ, और उनसे कहो कि राजा मेरे पति से बहुत नाराज़ हो गया है। किसी तरह आप उनकी रक्षा कीजिए। इस पर जो कुछ वे कहेंगे या करेंगे उससे तुम्हें असलियत का पता लग जाएगा।"

पत्नी ने ऐसा ही किया। वह पहले कल्याणवर्मा के घर गई और उन्हें सब कहानी सुनाई।

कल्याणवर्मा ने उत्तर दिया, "देवी! मैं वणिकपुत्र हूँ। मैं राजा से लोहा कैसे ले सकता हूँ। ऐसी स्थिति में तुम्हारे पति की रक्षा नहीं कर पाऊँगा।"

निराश होकर पत्नी वीरबाहु के पास पहुँची। उसने उसकी कहानी सुनते ही अपने हथियार सँभाले और तुरंत धवलमुख के पास पहुँचा। धवलमुख ने उसे बताया कि अभी-अभी मुझे समाचार मिला है कि मंत्रियों ने राजा को सही-सही बात बता दी है। राजा मुझ पर प्रसन्न हो गया है। अब आपको कष्ट करने की आवश्यकता नहीं है।

यह सुनकर बाहुबली बहुत प्रसन्न हुआ और अपने घर चला गया।

तब धवलमुख ने अपने पत्नी से कहा, "देखा तुमने मेरे इन दोनों मित्रों को। कितना और कैसा अन्तर है इनमें। एक की दोस्ती केवल बाहरी शिष्टाचार मात्र है। दूसरे की दोस्ती सचमुच की दोस्ती है। चिकनाई दोनों में है, लेकिन एक में तेल की चिकनाई है तो दूसरे में शुद्ध घी की।"

अनोखी शर्त

मधुर शास्त्री

पुरानी बात है। उन दिनों अयोध्या नगरी का नाम साकेत था। उस नगरी में एक महिला रहती थी- नाम था सुवर्णाक्षी। उसने एक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र के मुख से जो शब्द निकलता था, उसमें घोड़े के हिनहिनाने जैसा ध्वनि आती थी, इसलिए उसका नाम अश्वघोष रखा गया। अश्वघोष ने बहुत थोड़े समय में व्याकरण और साहित्य का अध्ययन कर लिया। उसकी रुचि कविता में थी। वह सुंदर श्लोक बनाने लगा। निरंतर परिश्रम और अध्ययन से वह महान पंडित और महान कवि बन गया।

धीरे-धीरे अश्वघोष का यश चारों ओर फैल गया। नाम हो जाने से समाज में उसका आदर होने लगा। जब फूल खिलता है, तो उसकी सुगंध चारों ओर फैल जाती है। इसी प्रकार कवि अश्वघोष का नाम पाटलिपुत्र जा पहुँचा। उन दिनों हमारे देश में कौशल और मगध अत्यंत बलशाली राज्य थे। अवंती भी अच्छा राज्य था। मगध नरेश के दरबार में अश्वघोष का बहुत सम्मान हुआ। उसने वहाँ सुंदर काव्यग्रंथों की रचना की। अश्वघोष की प्रशंसा केवल अपने देश तक ही नहीं, विदेशों तक भी जा पहुँची। अश्वघोष ने भगवान् बुद्ध के चरित्र और उपदेशों को लेकर एक महाकाव्य लिखा, उसका नाम था 'बुद्ध चरित'। उसकी बहुत चर्चा हुई।

कुछ दिन बीते कि मगध का बल और सौंदर्य दूसरे राजाओं को खटकने लगा। कई राजाओं ने हमले किए, परंतु वे पराजित हुए। उन दिनों एक भी राजा ऐसा नहीं था, जो मगध की ओर आँख उठा सके। एक दिन मगध को महान कष्ट का सामना करना पड़ा। मगध का सारा सैन्य बल नष्ट हो गया। धन और सम्पत्ति भी लुट गई। मगध को पराजय देने वाला था महान वीर कनिष्क। कनिष्क ने पाटलिपुत्र को चारों ओर से घेर लिया। मगधवासी भयभीत हो गए। डरी हुई जनता मौत के सपने देखने लगी। सभी को घमासान युद्ध होने की आशंका थी। तभी लोगों ने देखा कि कनिष्क का एक दूत आ रहा है।

दूत का रथ रुका। मगध नरेश के सैनिक सम्मान के साथ दूत को राजसभा में ले गए। दूत के राजसभा में पहुँचते ही सन्नाटा छा गया। दूत ने मगध नरेश का अभिवादन किया। नरेश ने दूत से पहले कुशल-मंगल पूछा। फिर आने का कारण बताने के लिए कहा।

दूत बोला - "महाराज! आपको पता ही है कि महावीर कनिष्क की सेना ने आपके नगर को चारों ओर से घेर लिया है। हमारी सेना का बल अपार है। आपकी सेना जीत नहीं सकती। फिर भी अगर आप चाहते हैं, तो युद्ध की घोषणा की जा सकती है।"

नरेश ने कहा - "दूत, तुमने जो कुछ कहा, उसका अभिप्राय हम समझ गए हैं। हम

" हम अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह समझते हैं। हमें व्यर्थ ही खून की होली खेलने का शौक नहीं है लेकिन हम हर प्रकार से अपना सम्मान सुरक्षित रखना चाहते हैं।"

लोग क्षत्रिय हैं। अपने सम्मान की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान करना हमारा धर्म है। हम युद्ध में जय-पराजय की चिंता नहीं करते।"

दूत बोला - "वह तो ठीक है महाराज ! परन्तु हमारे सम्राट चाहते हैं कि आप उनकी कुछ शर्तें मान लें। ऐसा करने से युद्ध से बचा जा सकता है। प्रजा को कष्ट से बचाया जा सकता है। प्रजा को कष्ट से बचाना राजा का कर्त्तव्य है।

राजा ने कहा - "हम अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह समझते हैं। हमें व्यर्थ ही खून की होली खेलने का शौक नहीं है लेकिन हम हर प्रकार से अपना सम्मान सुरक्षित रखना चाहते हैं। इसके लिए कुछ भी करना पड़े।"

"ठीक है महाराज ! हमारे सम्राट आपकी शक्ति से परिचित हैं। वीरों के प्राण बहुमूल्य होते हैं। इसलिए आप दो शर्तों को स्वीकार कीजिए।" - दूत ने फिर कहा।

नरेश पहले तो सोचने लगे। फिर कुछ सोचकर बोले - "यदि ऐसा है, तो तुम निर्भय होकर अपनी शर्तें रखो।"

सारी सभा मौन थी। सभी अपने-अपने ढँग से सोच रहे थे। कोई भयंकर घटना के बारे में सोच रहा था, तो कोई मन ही मन प्रभु से शान्ति की प्रार्थना कर रहा था। दूत ने सन्नाटा तोड़ते हुए कहा - महामहिम मगध नरेश ! हमारी केवल दो इच्छाएँ हैं। पहली यह कि भगवान् बुद्ध द्वारा व्यक्तिगत रूप से प्रयोग में लाया गया भिक्षा पात्र हमें भेंट में देने की कृपा करें। दूसरी यह कि हम मगध के राजकवि अश्वघोष को अपने यहाँ रखना चाहते हैं।

यह सुनकर मगध-नरेश पहले तो उदास हो गए। फिर यह सोचकर कि आज उनकी राजसभा का एक कवि पुरस्कृत हो रहा है वह मन ही मन प्रफुल्लित हो उठे। उन्होंने दूत की इच्छाएँ पूरी कर दीं।

कनिष्क ने अश्वघोष को बौद्ध सभा का अध्यक्ष बनाया। अश्वघोष बौद्ध धर्म के इतिहास में सदा के लिए अमर हो गए।

पिंजरे में बन्द तोता मुझे बहुत पसन्द था। लेकिन उसकी आफ़त आ गई थी।

दो दिन पहले की बात है। मैं घर के दरवाजे पर खड़ा था। एकाएक आवाज आई - 'बाबूजी, खिलौना ले लो।' मैंने चौंककर देखा - तेरह-चौदह बरस का एक छोकरा खड़ा था। उसके हाथ में एक छड़ी थी। छड़ी पर कुछ खिलौने झूल रहे थे। कुछ मिट्टी के, कुछ कागज के। देखने में एकदम साधारण।

मैंने कहा - "मैं क्या बच्चा हूँ जो खिलौने खरीदूँगा।"

"एक ले लो न बाबू।" - खिलौने वाले ने फिर कहा।

"किसी बच्चे को दे दो।" - मैंने सलाह दी।

"किसी बच्चे ने नहीं खरीदा बाबू। सुबह से घूम रहा हूँ। पर एक भी नहीं बिका। ले लो न। भगवान् भला करेगा।"

मैंने खिलौनों पर ध्यान दिया, पर कोई पसंद नहीं आया। मिट्टी के भालू, रीछ, डाल पर बैठी चिड़िया, चूहा और बिल्ली। एक तोता था पिंजरे

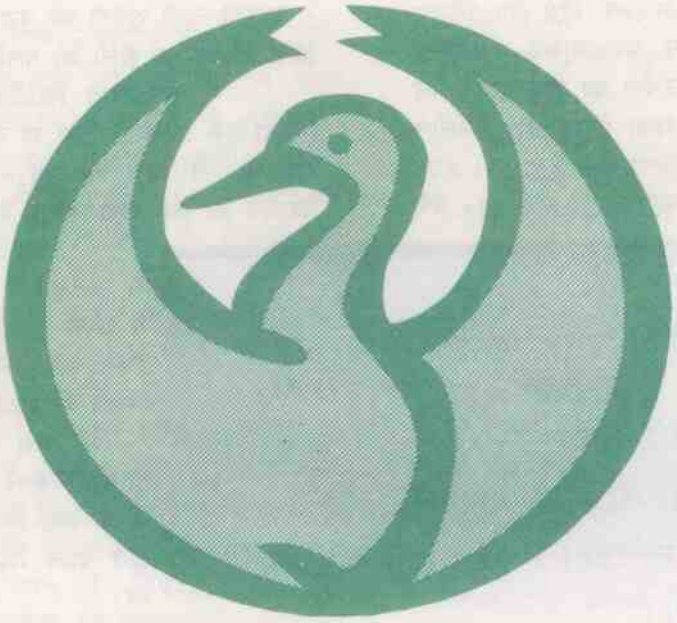

उसके अन्दर नन्हा-सा तोता। ध्यान से देखने पर हरा-हरा मालूम पड़ता था। ऐसे रद्दी खिलौने कौन बच्चा खरीदता।

मैंने वही तोता खरीदा - पिंजरे में बंद। दो रुपए में। अब उसी की आफ़त आ गई थी। शैली उसे छोड़ना नहीं चाहती।

शैली मकान की ऊपर वाली मंज़िल पर रहती है अपनी नानी के साथ। शैली की माँ दफ्तर में नौकरी करती है। शैली छोटी है, पीछे से कौन देखभाल करे। इसलिए माँ ने शैली को उसकी नानी के पास छोड़ा हुआ है। शैली के नाना नहीं हैं। नानी और वह - बस दो ही हैं।

मैंने पिंजरे में बन्द तोते को कील से लटका दिया। तभी शैली आ गई। वह रो रही थी। नानी ने मारा था इसीलिए। मैंने उसे गोद में उठा लिया। वह मुस्कराने लगी। रोना भूल गई। उसकी नज़रें पिंजरे में बन्द तोते पर टिकी थीं। वह खिलौने की तरफ हाथ बढ़ाने लगी तो मैंने उसे गोद से उतार दिया।

अब वह गर्दन ऊँची करके खिलौने को ताक रही थी। सूखे हुए आँसू गालों पर चमक रहे थे। मैंने कहा - "ना बेटी, उसे नहीं लेते। तुम्हारे लिए और ला दूँगा।" पर उसने मेरी बात नहीं सुनी। बस, उसी तरह खिलौने की तरफ हाथ बढ़ाती रही जैसे उसे अपने पास बुला रही हो।

मुझे मालूम था कि हाथ में उठाते ही शैली खिलौनी को तोड़ देगी। कील के सहारे लटका पिंजरे में बन्द तोता कितना अच्छा लग रहा था। मैं शैली को वहीं खड़ी छोड़कर बाहर निकल गया। शाम को घर लौटा तो पत्नी ने कहा - "शैली, तोते वाला खिलौना लेना चाहती है।"

"तुमने दे तो नहीं दिया।" मैंने पूछा, फिर देखा कि तोते वाला पिंजरा कील से लटका झूल रहा है।

"दिया तो नहीं है, पर वह सारा दिन उसके लिए मचलती रही है।" पत्नी ने कहा। तभी शैली आ गई। मैंने उसे गोद में उठा लिया। अब तोते और शैली के बीच बहुत कम फासला था। मैं उसे देख रहा था - वह एकटक तोते को घूरे जा रही थी।

"'एक ले लो न बाबू।" - खिलौने वाले ने फिर कहा।

"किसी बच्चे को दे दो।" - मैंने सलाह दी।

"किसी बच्चे ने नहीं खरीदा बाबू। सुबह से घूम रहा हूँ। पर एक भी नहीं बिका। ले लो न। भगवान् भला करेगा।"

और फिर उसने झपट्टा मारकर तोते का पिंजरा कील से खींच लिया। मैंने अचकचाकर उसे पीछे हटाना चाहा तो खिलौना ज़मीन पर गिर पड़ा। मैंने शैली को झट ज़मीन पर खड़ा किया और खिलौने को उठा लिया। गिरने से पिंजरा हिल गया था। अंदर रखा मिट्टी का तोता भी शायद टूट गया था। मैंने पिंजरे के तारों को सीधा करके खिलौना फिर से कील पर टाँग दिया।

"बच्ची है, माँग रही है तो दे क्यों नहीं देते।"

"खिलौने घर में आते ही टूट जाएँ, यह क्या अच्छी बात है। कुछ दिन तो सही-सलामत रहना चाहिए उन्हें।" मैंने सख्ती से कहा - "रोती है तो रोती रहे, मैं खिलौना नहीं दूँगा।"

"क्यों उतारा! देखा, खिलौना टूट गया न।" मैंने तेज़ आवाज में कहा तो शैली रो पड़ी। आँखें अब भी उसकी खिलौने पर टिकी थीं।

उसका रोना सुन, पत्नी चली आई। बोली - "बच्ची है, माँग रही है तो दे क्यों नहीं देते।"

"खिलौने घर में आते ही टूट जाएँ, यह क्या अच्छी बात है। कुछ दिन तो सही-सलामत रहना चाहिए उन्हें।" मैंने सख्ती से कहा - "रोती है तो रोती रहे, मैं खिलौना नहीं दूँगा।"

पत्नी शैली को चुप कराने में लगी थी। उन्होंने कहा - "इसकी नानी सुनेंगी को बुरा मानेंगी। उन्हें महसूस होगा, शायद हम शैली को मारते हैं।"

मैं चुप खड़ा खिलौने को देख रहा था। पिंजरा एक तरफ से टेढ़ा हो गया था। मुझे दुख हो रहा था। मैं सोच रहा था - "आखिर शैली इसी खिलौने को क्यों लेना चाहती है!"

कई दिन बीत गए। दफ्तर से लौटकर मैं उस खिलौने के बारे में ज़रूर पूछता था। पता चलता कि शैली उसी को माँगती है, और न मिलने पर रोती है।

उस शाम दफ्तर से आया तो शैली कमरे में खड़ी दिखाई दी। उसके हाथ छिल रहे थे। मैंने देखा, तोते वाला खिलौना कील पर नहीं था।

मैं तेज कदमों से अंदर घुसा। खिलौना शैली के हाथों में था। उसकी उँगलियाँ चल रही थीं। मेरी समझ में नहीं आया कि खिलौना उसके हाथ कैसे लग गया। मन हुआ जोर का थप्पड़ लगाऊँ और खिलौना छीन लूँ।

पर शैली को जैसे मेरे आ पहुँचने का पता ही न था। वह अपने काम में लगी रही। उसकी उंगलियां पिंजरे का तार तोड़ रही थीं। तो इस शैतान लड़की को खिलौना इसीलिए चाहिए था कि उसे तोड़ सके।

मैं देखता रहा - शैली ने पिंजरा तोड़कर टूटा हुआ तोता अंदर से निकाल लिया - शायद अब इसकी बारी थी। लेकिन नहीं, वह तोते को चूम रही थी। टूटा पिंजरा जमीन पर पड़ा था, मैं चुप खड़ा देख रहा था।

अपना घर

डॉ0 ओम्प्रकाश सिंहल

घटना पुरानी है। किसी जंगल में एक तोता रहता था। समय के साथ-साथ जगह में बदलाव आता गया। पेड़ कटते चले गए। आबादी घनी होती गई। घूमने फिरने की पहले जैसी आज़ादी न रही। खाने-पीने की कमी हो गई। तोते ने उस जगह को छोड़कर किसी दूसरी जगह जाने का निश्चय कर लिया।

एक दिन तोता पहाड़ों की ओर चल पड़ा। उड़ते-उड़ते वह बहुत दूर निकल गया। अपने देश की सीमा पीछे छूट गई। वह किसी दूसरे देश की हरी भरी पहाड़ी पर आ पहुँचा। बड़ी सुंदर थी वह पहाड़ी। पेड़ फल-फूलों से लदे थे। पके हुए रसदार फलों को देखकर मन खाने के लिए ललचा उठता था। फूलों की भीनी-भीनी महक और मंद-मंद बयार पल भर में सारी थकान दूर कर देती थी। पेड़ों की झुकी हुई डालियाँ तनी हुई छतरी का काम देती थीं। तोते ने इसी स्थान पर रहने का निश्चय कर लिया।

उसके अपने घर में आग लगी हुई थी। वह फौरन पास वाले तालाब की ओर दौड़ा। अपनी चोंच में पानी भर-भर कर लाने और आग बुझाने लगा।

दिन बीतते चले गए। एक दिन, दो दिन, महीना, दो महीने, साल, दो साल। इस तरह बरसों बीत गए। तोते को कभी-कभी अपने घर की बहुत याद आती। वह बेचैन हो उठता। धीरे-धीरे अपने मन को समझाता - घरवालों ने मेरी कोई चिंता नहीं की। आज तक कोई खोज खबर नहीं ली। जब वे ही मुझे अपना नहीं मानते तब मैं उनकी चिंता क्यों करूं?

एक दिन तोते ने आकाश में काला धुँआ फैलते हुए देखा। वह उसी ओर से आ रहा था जिस ओर उसका अपना घर था। वह चिंतित हो उठा। सोचता रहा कि घर जाऊँ या न जाऊँ। उसकी आँखों के सामने घर के सदस्य एक-एक करके आने लगे। अब उसके लिए एक भी पल बैठना दूभर हो गया। उसके पंख घर जाने के लिए फड़फड़ा उठे। वह पूरी शक्ति से तेज़ उड़ान भरने लगा।

वह बहुत जल्दी अपने घर पहुँच गया। उसका अनुमान एकदम सही था। उसके अपने घर में आग लगी हुई थी। वह फौरन पास वाले तालाब की ओर दौड़ा। अपनी चोंच में पानी भर-भर कर लाने और आग बुझाने लगा। भगवान् ने उसकी यह लीला देखकर कहा - ओ मूर्ख ! यह आग कहीं इतने-से पानी से बुझ सकती है। तोता बोला - भगवन्! मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि इस भयंकर आग को बुझाने के लिए इतना पानी काफी नहीं है, पर मुझे अपनी सामर्थ्य भर कोशिश तो करनी ही चाहिए। हो सकता है कि मुझे प्रयत्न करते देख कोई दूसरा भी सहायता के लिए आ जाए। थोड़ी देर रुक कर तोते ने फिर कहा - भगवन् ! यह मेरी जन्म-भूमि है। मैं यहीं पला, बढ़ा। यहीं रहकर मैंने उड़ान भरना सीखा। परदेस जाकर जीवन का सुख भोगा। मैं अपने इस घर को बर्बाद होते हुए नहीं देख सकता।

भगवान् ने तोते की बात ध्यान से सुनी। मन ही मन कुछ सोचा। फिर एक मंत्र पढ़ा। मंत्र समाप्त होते ही आकाश में बादल छा गए। थोड़ी देर की बारिश से ही आग बुझ गई। घर पर आए संकट को समझने, तुरंत घर लौट आने और संकट से उबरने के लिए स्वयँ प्रयत्न करने के कारण तोते का घर तहस नहस होने से बच गया।

मुस्काया सूरज

स्व० स्नेह अग्रवाल

एक था सुन्दर नन्दनकानन। यह नाम था - एक सुन्दर उद्यान का। नन्दनकानन, रंग-बिरंगे फूलों, हरे-भरे पेड़ों से सुशोभित रहता था। उद्यान के बीच में फव्वारों में से मोतियों की तरह पानी की बूँदें झरती थीं। नन्दनकानन में फूलों पर शोख तितलियाँ नाचतीं, काले-काले भौंरे गुंजार करते। इन तितलियों में से तीन तितलियाँ आपस में बड़ी अच्छी मित्र थीं।

एक थी - लाल तितली, एक सफेद और एक सुनहरी। तीनों तितलियाँ मिल-जुलकर फूल-फूल घूमतीं और मस्त रहतीं। एक दिन तीनों तितलियाँ मेहंदी की झाड़ी में लुका-छिपी खेल रहीं थीं। अचानक आकाश में घनघोर घटा छा गई। काले-काले बादलों ने गड़गड़ा कर अपना गुस्सा दिखाया। फिर सहसा मोटी-मोटी बूँदे पड़ने लगी टपाटप-टपाटप।

तितलियाँ अपने खेल में ऐसी खो गई थीं कि उन्होंने मौसम को देखा ही नहीं। अब अचानक पड़ने लगी बरसात से वे घबरा उठीं। इतनी तेज़ बरसात में वे उड़कर अपने घर तक भी नहीं जा सकती थीं। तितलियों ने पंख फड़फड़ाए और जा पहुँची लाल गुलाब के पास। गुलाब बड़ी प्रसन्नता से इठलाता अपनी डाल पर झूम रहा था। अपनी पंखुड़ियों पर वर्षा की बूँदें देख रहा था।

तितलियों ने उसके पास पहुँचकर कहा-"प्यारे और सुन्दर गुलाब, कृपा कर हमें अपनी पंखुड़ियों की शरण दो, नहीं तो बारिश में हमारे नाज़ुक पंख भीग जाएंगे। फिर हम कैसे उड़ पाएंगी!" गुलाब ने अपनी गर्दन हिलाई। फिर बोला-"हाँ-हाँ जरूर, लाल तितली, आओ, तुम मेरी पंखुड़ियों की छाया में आराम से बैठ जाओ, पर बाकी तितलियों को मैं नहीं बैठाऊंगा, क्योंकि वे मुझ जैसी नहीं दिखतीं।" इतना कहकर गुलाब मस्ती में गुनगुनाने लगा। लाल तितली यह सुनते ही गुलाब से दूर जा छिटकी। बोली-"नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता कि मैं आराम से सूखी बैठी रहूँ, और मेरी सहेलियाँ वर्षा में भीगें। जो भी होगा, हम साथ ही सहेंगी।"

वर्षा बढ़ती ही गई, सो तीनों तितलियाँ सुनहले गेंदे की ओर बढ़ीं। उससे प्रार्थना की कि वह अपनी पंखुड़ियों में उन्हें जगह दे। गेंदा सुनहली तितली को बैठाने के लिए तो तैयार हो गया, पर बाकी तितलियों को उसने मना कर दिया।

इस पर सुनहरी तितली ने कहा-"मैं अपनी सहेलियों के साथ विश्वासघात नहीं करूँगी।"

अब तीनों तितलियाँ बढ़ीं चम्पा, चमेली, मोगरा की बेलों की तरफ, जिनमें से खुशबू की लहरियाँ उठ-उठकर वातावरण को सराबोर कर रही थीं। तितलियों ने चम्पा के सामने सिर झुकाकर अपनी परेशानी बताई, पर यहाँ भी वही हुआ। सफेद, शुभ्र फूल सफेद तितली का स्वागत कर रहे थे पर लाल, पीली तितलियों को शरण देने के लिए उन्होंने अपनी नन्हीं-नन्हीं गरदनें हिला दीं।

तीनों तितलियाँ अब वर्षा में ही उड़ने लगीं। फूलों के पक्षपात पर उन्हें बहुत गुस्सा आया। उड़ते-उड़ते पंख थक गए थे, पर उन्होंने पल भर के लिए भी एक-दूसरे का साथ नहीं छोड़ा।

"नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता कि मैं आराम से सूखी बैठी रहूँ, और मेरी सहेलियाँ वर्षा में भीगें।

आकाश में सूरज अब तक इन तीनों तितलियों की बातें सुन रहा था। उनकी सच्ची मित्रता और एकता देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। वह बादलों को चीरकर नीले आकाश में चमकने लगा। बारिश थम गई। एकता के पुरस्कार-स्वरूप प्यारे सूरज ने अपनी किरणों से मुस्कराकर तीनों तितलियों के गीले पंख सुखा डाले। तितलियों की एकता देखकर फूलों ने भी सबक पाया। अपनी डालों पर लहरा-लहरा कर उन्हें बुलाने लगे।

बेसुरी बाँसुरी

डॉ. रवीन्द्र दरगन

गाँव में मोहन को सब जानते थे। छोटी-सी आयु का वह लड़का अकेला रहता था। उसके माता-पिता की मृत्यु हो चुकी थी। घर में कुछ सम्पत्ति भी नहीं थी, अतः खाने-पीने की कमी बनी रहती थी। अपने जीवनकाल में मोहन के पिता बाँसुरियाँ बनाकर बेचा करते थे। उनकी आय से घर का खर्च चल जाता था। अब वही काम मोहन करता था। मोहन के पिता की बनाई हुई बाँसुरियों की आवाज़ सुरीली होती थी, अतः वे जल्दी बिक जाती थीं। परन्तु मोहन की बनाई बाँसुरियों में कोई विशेषता नहीं थी। वे न तो देखने में सुन्दर थीं और न उनकी आवाज़ में ही मिठास थी। इसलिए वे अधिक नहीं बिकती थीं। दिन भर की दौड़धूप के बाद जो थोड़े बहुत पैसे उसे मिलते थे, उनसे उसका गुजारा मुश्किल से हो पाता था।

वैसे मोहन अक्सर सोचा करता था कि अगर उसकी बाँसुरियों में कोई अनोखी विशेषता आ जाए तो उनकी बिक्री बढ़ जाए। वह अमीर हो जाए। परन्तु उसकी बाँसुरियाँ बेसुरी ही थीं, उनसे मधुर स्वर नहीं निकलते थे। वह समझ नहीं पाता था कि क्या करे और क्या न करे।

एक बार मोहन जंगल में टीले पर बैठा बाँसुरी से मधुर स्वर निकालने की कोशिश कर रहा था। गरमी का मौसम था। संध्या ढल चुकी थी। रात धीरे-धीरे उतर रही थी। चाँद आकाश में कुछ ऊपर उठ आया था। मोहन बजा तो बाँसुरी रहा था परन्तु उसका मन कहीं और खोया हुआ था। वह सोच रहा था कि कैसे और कब उसकी बाँसुरियों से मधुर स्वर निकलेंगे और कब उसके दिन फिरेंगे। वह बैठे-बैठे जैसे सपना लेने लगा कि किसी परी के वरदान से उसकी बाँसुरियों में मधुर स्वर भर गए हैं और वह बहुत-सी बाँसुरियाँ बेच रहा है। सहसा उसके हाथ से बाँसुरी छूट गई और उसका सपना टूट गया।

तभी उसे दूर आकाश से कोई आकृति उतरती हुई दिखाई दी। उसके वस्त्र सफेद थे। लगता था कि अपने पंखों के सहारे तैरती हुई वह धीरे-धीरे धरती पर उतर रही हो। मोहन ने अनुमान लगाया कि वह कोई परी होगी। उसने आँखें मलकर पुनः देखा। वह वास्तव में परी ही थी। मोहन उसकी ओर एकटक देखने लगा। उसे महसूस हुआ कि परी मुस्करा रही है। उसने सोचा कि परी उसकी पुकार सुनकर ही आई है और उसकी प्रसन्नता का अर्थ है कि वह मोहन को वरदान देगी। उसने सोचा कि तब तो उसके जीवन में भी कुछ रस आ जाएगा।"

कुछ क्षण सोचने के बाद मोहन उठा और परी की ओर चल दिया। उसके मन में अब भी यह सन्देह था कि जो वह देख रहा है वह सच है भी या नहीं। शायद उसकी आँखों का भ्रम ही है और वह ज्यों ही परी के पास पहुँचेगा, वह गायब हो जाएगी। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। वह परी के निकट पहुँच गया, फिर भी वह मुस्कराती हुई खड़ी रही। मोहन को अपने सौभाग्य पर विश्वास हो गया। उसने सम्मान के साथ परी का अभिवादन किया। परी

शायद उसकी आँखों का भ्रम ही है और वह ज्यों ही परी के पास पहुँचेगा, वह गायब हो जाएगी।

ने स्नेह भरे शब्दों में उसे आशीर्वाद दिया और उसकी बाँसुरी को छूकर वापिस कर दिया। मोहन की समझ में कुछ नहीं आया। उसे अपलक अपनी ओर ताकते देखकर परी ने कहा, "अब अपनी बाँसुरी को बजाओ। तुम्हारी बाँसुरी से तो बहुत मधुर स्वर निकलते हैं।" मोहन मंत्रमुग्ध सा खड़ा था। परी का आदेश सुनकर उसने बाँसुरी को होठों से लगाया। उसके स्वर फूँकते ही बाँसुरी में से मधुर स्वरलहरियाँ निकलने लगीं। मोहन को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। उसने परी की ओर देखा। वह मंद-मंद मुस्करा रही थी। मोहन ने एक क्षण रुककर पुनः बाँसुरी बजाना शुरू किया। फिर वैसी ही मधुर ध्वनि गूँज उठी। अब तो मोहन को विश्वास हो गया था कि उसे परी का वरदान प्राप्त हो गया है। उसने कृतज्ञ भाव से परी की ओर देखा। परी ने कहा, "मोहन, अपने इन दिनों को सदा याद रखना। कभी भूलकर भी घमण्ड नहीं करना। इस बाँसुरी के मधुर स्वर प्रेम, नम्रता और भाईचारे के स्वर हैं। इस बात को भूल जाओगे तो परिणाम अच्छा नहीं होगा।" मोहन समझ गया। उसने परी को वचन दिया कि वह कभी घमण्ड नहीं करेगा। सदा अच्छे मार्ग पर चलेगा। देखते ही देखते परी अदृश्य हो गई। मोहन कुछ देर वहाँ खड़ा रहा, फिर घर लौट आया।

इसके बाद मोहन के जीवन में बहुत परिवर्तन आ गया। उसकी बनाई बाँसुरियों की धूम मच गई। अब वह निर्धन न रहा। उसके पास बहुत सा धन इकट्ठा हो गया। उसे परी को दिए हुए वचन की स्मृति भी न रही।

एक बार मोहन बाँसुरियाँ बेचकर लौट रहा था। रास्ते में एक निर्धन बालक अपनी माँ से बाँसुरी लेने की हठ कर रहा था। मोहन के पास आखिरी बाँसुरी थी। उसने बालक की माँ से बाँसुरी के दाम ज्यादा माँगे। बालक के हठ के कारण उस औरत को मजबूर होकर अधिक पैसे देने पड़े। मोहन मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अगले दिन से अपनी बाँसुरियों के दाम बढ़ाने का फैसला कर लिया।

अगले दिन उसके तेवर ही बदले हुए थे। वह बाँसुरी के अधिक दाम माँग रहा था। लोग अधिक दाम देना नहीं चाहते थे। बच्चों को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए मोहन एक बाँसुरी बजाने लगा। सहसा बाँसुरी में से बेसुरी सी आवाज़ निकली। मोहन घबराकर रुक गया। फिर सँभल कर उसने पुनः स्वर फूँका। एक बार फिर वैसी ही भद्दी ध्वनि निकली। मोहन ने जल्दी से उस बाँसुरी को एक तरफ रख दिया और दूसरी बाँसुरी को उठा लिया। उस बाँसुरी से भी मधुर स्वरलहरी नहीं निकली। मोहन बहुत घबरा गया। उसने एक-एक करके सभी बाँसुरियों को बजाकर देखा। किसी भी बाँसुरी में से मधुर स्वर नहीं निकले। उस दिन उसकी एक भी बाँसुरी नहीं बिकी। वह उदास मन से घर लौट आया।

घर आकर मोहन को चैन नहीं पड़ा। उसने फिर सारी बाँसुरियों को बजाकर देखा। ऐसा लगता था कि उन बाँसुरियों की मधुरता किसी ने छीन ली हो।

घर आकर मोहन को चैन नहीं पड़ा। उसने फिर सारी बाँसुरियों को बजाकर देखा। ऐसा लगता था कि उन बाँसुरियों की मधुरता किसी ने छीन ली हो। वे पहले की तरह बेसुरी हो गई थीं। मोहन को पता तो लग गया था कि बाँसुरियाँ बेसुरी क्यों हो गई हैं, लेकिन अब क्या हो सकता था?

बदल गई बुद्धि

- अमरनाथ शुक्ल -

महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया था। पांडव जीत गए थे। धर्मराज युधिष्ठिर को सिंहासन पर बैठकर राज-काज सँभालना था। लेकिन युधिष्ठिर बहुत उदास थे। युद्ध में परिवार के बहुत से लोगों के मारे जाने के कारण उनका चित्त अत्यन्त दुःखी था। अतएव उन्होंने सिंहासन पर बैठने से मना कर दिया। जब मना करने का कारण पूछा गया तब वे बोले - इतने सारे लोगों के संहार से प्राप्त हुआ राजपद मुझे स्वीकार नहीं है। श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर को समझाते हुए कहा- इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। तुमने अपने धर्म का पालन किया है। जिसके साथ धर्म होता है उसी की जीत होती है। युद्ध में सबको अपने-अपने कर्मों का फल प्राप्त होता है। अतएव अब आपको इसकी चिंता छोड़कर राजधर्म का पालन करना चाहिए। लेकिन युधिष्ठिर ने श्री कृष्ण की बात नहीं मानी। तब श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा - अभी परिवार के पितामह युद्धभूमि में जीवित हैं। उनके पास चलो। वे जैसी राय दें वैसा ही करो। युधिष्ठिर ने यह सलाह मान ली।

श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा - अभी परिवार के पितामह युद्धभूमि में जीवित हैं। उनके पास चलो।

युधिष्ठिर, श्री कृष्ण, अर्जुन, द्रौपदी तथा अन्य कुटुम्बी जन मिलकर भीष्म पितामह के पास पहुँचे। भीष्म पितामह के चरणों में सिर नवाकर युधिष्ठिर ने अपने मन के अशांत रहने की बात कही।

पितामह बोले - "युधिष्ठिर, तुम्हें किसी के मारे जाने का शोक नहीं करना चाहिए। कौरवों ने जो रास्ता अपनाया था, उसका अंत इसी प्रकार होना था। मनुष्य को अपनी करनी का फल भोगना ही पड़ता है। तुम्हारा रास्ता धर्म का था, अतः तुम्हारी जय हुई। अब तुम धर्मानुसार सिंहासन पर बैठकर, प्रजा के कल्याण का कार्य करो। यदि राजा अपने धर्म का पालन नहीं करता, तो एक दिन प्रजा का कष्ट बलवान होकर उसे ही नष्ट कर देता है। यदि कोई व्यक्ति अपने सामने अधर्म तथा अन्याय को होते हुए चुपचाप देखता रहे तो उस पर भी अधर्मी तथा अन्यायी होने का दोष लगता है। यदि देखने वाले मनुष्य में उसे रोकने की शक्ति न हो तो उसे उठकर चले जाना चाहिए।"

जिस समय भीष्म पितामह युधिष्ठिर को इस तरह का उपदेश दे रहे थे उस समय द्रौपदी अर्जुन की ओर देखकर हँस पड़ी। साथ ही उदास भी हो गई। द्रौपदी के इस प्रकार हँसने तथा उदास होने का कारण समझते हुए भीष्म पितामह ने कहा - "बेटी द्रौपदी ! तुम्हारा दुःख मैं समझ रहा हूँ। कौरवों की उस भरी सभा में तुम्हारा अपमान होता रहा और मैं चुपचाप देखता और सहता रहा। न मैं दुर्योधन और दुःशासन को मना कर सका और न ही उसके विरोध में उठकर जा सका। मैं आज जो इस तरह का उपदेश दे रहा हूँ, इसका भी कारण है बेटी। बेटी ! उस समय मुझमें इस प्रकार का ज्ञान नहीं रह गया था। अधर्मी कौरवों के राज्य में रहते और उनका अन्न खाते-खाते मेरी

बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। उसी दूषित अन्न के कारण मैंने अन्यायी कौरवों का साथ दिया और इस गति को प्राप्त हुआ। इधर छप्पन दिनों से मैं निराहार रह रहा हूँ। इसलिए अब मेरे शरीर में दूषित अन्न नहीं रहा। अतः मेरी बुद्धि शुद्ध हो गई है।"

इसके बाद पितामह ने उन लोगों को एक कथा सुनाई।

'राजा शिवि के दरबार में एक परमहंस साधु रहते थे। वह बहुत ही धार्मिक तथा त्यागी विचारों के थे। उन्हें किसी चीज से मोह नहीं था। वह राजा शिवि को ज्ञान

की अच्छी-अच्छी बातें बताते और अपने में मस्त रहते।

राजा के नगर में एक ब्राह्मण रहता था। उसने अपनी बेटी के ब्याह के लिए नगर के सुनार को आभूषण बनाने के लिए खरा सोना दिया। सुनार था कपटी। ब्राह्मण से खरा सोना लेकर उसने पीतल के कुछ आभूषण बनाए। उन पर सोने का मुलम्मा कर, ब्राह्मण को दे दिए। भोले-भाले ब्राह्मण ने वे आभूषण बेटी को ब्याह में देकर विदा कर दिया।

बेटी के ससुराल में पहुँचने के कुछ दिनों बाद नकली जेवरों का भेद खुल गया। लड़की का पति बहुत नाराज हुआ। उसने अपनी पत्नी को उसके पिता के घर वापस भेज दिया।

ब्राह्मण को इससे बड़ा दुःख हुआ। उसने सोचा - "मेरी बेटी के इस दुःख का कारण वह सुनार है।" उसने राजा शिवि के दरबार में फरियाद की। राजा ने सुनार को दंड देकर जेल भेज दिया। छल-कपट से कमाई गई सारी सम्पत्ति राजकोष में जमा कर ली गई। ब्राह्मण की बेटी को शुद्ध सोने के आभूषण देकर फिर से पति के घर भेज दिया गया।

कुछ दिन बाद राजकोष में जमा धन से खाद्य सामग्री मँगवाकर रसोई में भोजन बनने लगा। परमहंस साधु भी उस भोजन को करने लगे। कई दिन तक यह भोजन करते-करते उनके मन में परिवर्तन आने लगा। उन्हें अपनी त्यागी वृत्ति बेकार लगने लगी। उनका मन सांसारिक सुखों की ओर झुकने लगा। राजमहल में आना-जाना था ही। एक दिन उन्होंने चुपके से रानी का हीरों का हार अपनी झोली में डाला और गायब हो गए।

परमहंस के इस तरह अचानक चले जाने से राजा को चिंता हुई। फिर सोचने लगे - "परमहंस महात्मा हैं। कुछ दिनों के लिए कहीं चले गए, आ जाएंगे।"

परमहंस के इस तरह अचानक चले जाने से राजा को चिंता हुई। फिर सोचने लगे - "परमहंस महात्मा हैं। कुछ दिनों के लिए कहीं चले गए, आ जाएंगे।"

उधर परमहंस का हाल यह कि हार तो उठा लाए, पर साधु-महात्मा होकर उसे बेचने कहाँ जाएँ? बड़ी मुश्किल थी। इसी संकट में तीन-चार दिन भूखे रहना पड़ा। फिर सद्गृहस्थों के घर से भिक्षा लाकर बनाने-खाने लगे। मोह छूटा। चित्त शुद्ध हुआ। एक दिन कुटिया में खूँटी पर टँगे उस हार पर उनकी दृष्टि पड़ी। पिछला सब याद आया। अपनी करनी पर बड़ा पछतावा हुआ। सोचने लगे -"रानी का हार चुराकर मैंने बड़ा अपराध किया है। इसे लौटाकर अपराध स्वीकार कर, दंड भोगना चाहिए।"

वे हार लेकर पहुँच गए राजा के पास। परमहंस को आया देख, राजा बड़े प्रसन्न हुए। पर परमहंस ने कहा - "राजन! रानी का हार मैं चुरा ले गया था। अपने अपराध का दंड माँगने आया हूँ।"राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ कि परमहंस जैसे सिद्ध त्यागी महात्मा ने हार की चोरी

क्यों की ? अपनी सिद्धि से तो वह संसार का बड़े से बड़ा वैभव प्राप्त कर सकते थे। इससे भी बढ़कर आश्चर्य यह हुआ कि चोरी के अपराध का दंड स्वयँ माँगने आए हैं।

राजा ने हाथ जोड़कर कहा - "महात्मा जी ! मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है।"

परमहंस ने बताया - "उस लोभी और कपटी सुनार की सम्पत्ति आपने राजकोष में जमा कर दी थी। कुछ दिन बाद उसी सम्पत्ति से खाद्य सामग्री खरीद कर भोजन बनने लगा। मैं वह दूषित अन्न खाता रहा। जब उस दूषित कमाई के अन्न का अंश मेरे शरीर में नहीं रहा, तो मुझे अपने अपराध का ज्ञान हुआ।"

यह कथा सुनाकर पितामह ने कहा - "द्रौपदी, कलुषित कमाई के अन्न का दो-चार दिन भोजन करने पर सिद्ध महात्मा परमहंस जैसे साधु की बुद्धि में विकार आ गया। मैं तो अधर्मी दुर्योधन के अन्न पर जीवन ही बिता रहा था। इसलिए उस समय धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय का मेरा विवेक नष्ट हो गया था। अब दुर्योधन के दूषित अन्न का कोई अंश मेरे शरीर में नहीं है। इसीलिए मैं ज्ञान देने की स्थिति में हूँ।" यह सुनकर पांडवों ने सिर झुका लिया ।

भारत के राष्ट्र-प्रतीक

डॉ० सरला चौधरी

जो विशेष प्रतीक राष्ट्र के गुण–गौरव तथा अपने अलग अस्तित्व के सूचक होते हैं वे राष्ट्रीय प्रतीक कहलाते हैं। वस्तुतः राष्ट्र की संकल्पना और उसके स्वरूप को एक विशिष्ट पहचान देने वाले विभिन्न तत्त्व राष्ट्र–प्रतीक होते हैं।

विश्व में प्रत्येक जाति, धार्मिक समुदाय और देश के अपने कुछ प्रतीक होते हैं जिनसे उनकी निजी विशेषता, अस्तित्व या अस्मिता का बोध होता है। जैसे भारत का तिरंगा झण्डा बलिदान, शांति और कृषि–वैभव का प्रतीक है। ऐसे कई प्रतीकों को स्वतन्त्र भारत के संविधान में मान्यता प्राप्त है। प्रत्येक भारतवासी को इसका ज्ञान अपेक्षित है। इन प्रतीकों का परिचय इस प्रकार है :

राष्ट्र-ध्वज

प्रत्येक भारतवासी चक्रांकित तिरंगे को प्राणों से भी प्रिय मानता है। तिरंगे में तीन रंग हैं –

ऊपर का केसरी रंग त्याग, बलिदान, शौर्य का सूचक है बीच का श्वेत रंग ज्ञान, शांति और सात्विक वृत्तियों का तथा नीचे का हरा रंग समृद्धि, शस्यश्यामला हरित भारत–भूमि का सूचक है। झण्डे के फट जाने या मैला हो जाने पर उसे सम्मान सहित एकांत में जलाकर पूरा नष्ट करने की बात का उल्लेख भी संविधान में धारा ३ के अन्तर्गत किया गया है। इस प्रकार हमारा राष्ट्र–ध्वज सम्मान, गौरव और महानता का सूचक है।

राष्ट्र-चिन्ह

प्रत्येक देश का अपना एक राष्ट्रीय–चिन्ह होता है। यह चिन्ह संसार भर में उस राष्ट्र की पहचान माना जाता है। हमारे देश का राष्ट्र–चिन्ह अशोक चक्र अथवा धर्मचक्र के नाम से जाना जाता है। इस धर्मचक्र में अंकित तीन सिंह – तीन गुणों – सत्व गुण, रजोगुण और तमोगुण के प्रतीक हैं। इनका परस्पर एक दूसरे से तालमेल उसी प्रकार आवश्यक हैं जैसे अशोक–स्तम्भ पर तीनों सिंह एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। वास्तव में स्तम्भ पर चार सिंह हैं जो चारों दिशाओं – पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण की ओर देख रहे हैं। इसका अभिप्राय यह है कि सारे संसार पर समदृष्टि रखनी चाहिए। इसी भाव को सर्वधर्म समभाव कहा गया है। धर्म–चक्र इस शाश्वत सत्य का प्रतीक है कि त्याग, शान्ति, समृद्धि मूलतः धर्म की धुरी से संचालित है। चक्र के 'चौबीस अरे' दिन के चौबीस घंटों के द्योतक हैं जो हमें गतिशील बने रहने की प्रेरणा देता

है। इस धर्मचक्र के बाएं–दाएं अंकित घोड़े और बैल की आकृतियाँ हमारे राष्ट्र के पशु–धन और कृषि–धन के द्योतक हैं। दौड़ता हुआ घोड़ा अपार–शक्ति तथा गतिशीलता का सूचक है। इस राष्ट्र–चिन्ह के साथ अंकित 'सत्यमेव जयते' सूत्र वाक्य इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि जीत सदा सत्य की होती है।

राष्ट्र-गान

भारतीय संविधान में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा लिखा गया गीत "जन–गण–मन–अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता" को राष्ट्र–गान के रूप में मान्यता दी गई है। विशेष महत्वपूर्ण राजकीय समारोहों के समय (१५ अगस्त, २६ जनवरी) राष्ट्रपति के भाषण के उपरान्त तथा केन्द्र और राज्य के मंत्रियों, राज्यपालों आदि द्वारा सलामी लेने के समय यह गीत गाया जाता है। राष्ट्रगान के समय पूर्ण शान्ति आवश्यक है। सभी को सावधान की मुद्रा में खड़े रहना पड़ता है। इसके गायन के लिए ५२ सैकेंड की समय–अवधि निश्चित है। वस्तुतः 'राष्ट्रगान' देश के सम्मान, राष्ट्रीय एकता, अंखंडता, अनुशासनबद्धता और आस्था का द्योतक है।

राष्ट्र-पक्षी

सन् १९६० में जापान के तोक्यो (टोक्यो) नगर में 'अन्तर्राष्ट्रीय पक्षी संरक्षण परिषद' का सम्मेलन हुआ। उसमें विशिष्ट पक्षियों के सम्बन्ध में विचार करने के बाद सुझाव दिया गया कि हर देश को अपना एक राष्ट्र–पक्षी घोषित करना चाहिए। उसी संदर्भ में भारत सरकार ने जनवरी १९६३ में 'मोर' को राष्ट्र–पक्षी घोषित किया। इसका ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व है। मोर का सुन्दर कलात्मक व्यक्तित्व सौन्दर्य–बोध का सूचक है। भगवान शिव के पुत्र कार्तिकेय का वाहन मोर है। कृष्ण–भक्ति के क्षेत्र में भी 'मोर–मुकुट' कृष्ण के स्वरूप का प्रतीक है। धार्मिक क्षेत्र के साथ–साथ मोर घातक मनोवृत्तियों के नाश का भी सूचक है। मोर सर्पभक्षी है। सर्प मृत्यु, भय आदि तामसी वृत्तियों का प्रतीक है और मोर उसके विनाश का। वस्तुतः मोर सौन्दर्य, निर्भयता सात्विकता का द्योतक है।

राष्ट्र-पशु

जुलाई सन् १९६९ में भारत सरकार ने सिंह को राष्ट्र–पशु घोषित किया। सिंह को राष्ट्र–पशु के रूप में मान्यता प्रदान करना निर्भीकता, साहस, दृढ़संकल्प और स्वाभिमान की भावना का सूचक है। हमारे अनेक प्राचीन भवनों, देवालयों तथा महलों आदि के मुख्य द्वार पर सिंह सजग प्रहरी के प्रतीक रूप में विद्यमान रहते हैं।

पिछले कई वर्षों में सिंहों की संख्या इतनी कम होने लगी कि भारत के जंगलों में सिंह को देख पाना कठिन हो गया। इसी कारण से भारत सरकार ने अनुभव किया कि सिंह को भारत का राष्ट्र–पशु मानना युक्तिसंगत नहीं। नवम्बर १९७२ में भारत सरकार ने सिंह के स्थान पर 'बाघ' को राष्ट्र–पशु घोषित कर दिया। 'बाघ' भी सिंह की तरह प्राचीन काल से 'शक्तिशाली' रूप में विख्यात है। इसकी सुनने की शक्ति भी इतनी तेज़ होती है कि हल्की सी आहट से ही उसके कान खड़े हो जाते हैं। यह सजगता और शौर्य का सूचक है।

जिस प्रकार जड़ के बिना वृक्ष की कल्पना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार इन प्रतीकों के बिना भारत के स्वरूप की कल्पना असंभव है।

वस्तुतः ये राष्ट्र प्रतीक भारतीय अस्मिता के मूल आधार हैं। जिस प्रकार जड़ के बिना वृक्ष की कल्पना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार इन प्रतीकों के बिना भारत के स्वरूप की कल्पना असंभव है।

मेगसासे पुरस्कार विजेता **श्री रमेश कौशिक** की कलम से ...

कविताएँ

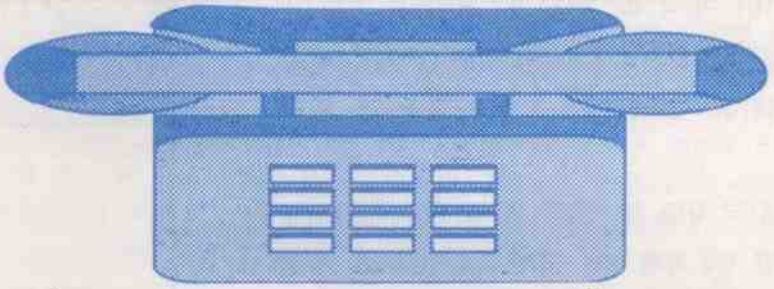

चोर

अगड़म बगड़म
धाई – धप्पा
चोर कहाँ है ?
जल्दी बोलो
छान लिया है
चप्पा–चप्पा ।

अगड़म बगड़म
धाई – धप्पा
चोर रसोई
में दुबका है,
मुँह में उसके
हलुआ गप्पा।

अगड़म बगड़म
धाई – धप्पा
जल्दी निकलो
शिमलू चोर
आने वाले
मम्मी – पप्पा।

फ़ोन

टिनन टिनन टिन
टिन टिन टोन
बुला रहा है
तुमको फ़ोन !
'हैलो–हैलो !
क्या है नाम ?
'बोल रहा हूं
मैं जयराम।'
'बोलो–बोलो
क्या है काम?'
'चुप से सुन लो
मुझसे श्याम–
आज शाम
घर पर आना
मेरे संग
खाना खाना
मेरा जन्म–
दिवस है आज
पापा–मम्मी
खुश हैं आज।'
कहा श्याम ने–
'मेरे भाई
तुमको मेरी
लांख बधाई।
आज शाम
निश्चय आऊंगा,
खूब मिठाई
मैं खाऊँगा।'
बन्द किया
दोनों ने फोन।
टिनन टिनन टिन
टिन टिन टोन।
कितना अच्छा
है यह फ़ोन
टिनन टिनन टिन
टिन टिन टोन।

शून्य

पहले मैं सोचा करता था
नहीं शून्य का कुछ भी मतलब
लेकिन इसमें कितनी ताकत
इसको जान गया हूँ मैं अब।

अगर एक के साथ शून्य हो
तो पूरे दस बन जाएँगे
दस के साथ लगाओगे यदि
तो पूरे सौ कहलाएँगे।
सौ के संग भी एक शून्य हो
तो हज़ार यह बन जाते हैं
एक शून्य यदि और यहाँ हो
दस हज़ार फिर कहलाते हैं।

कुछ भी नहीं समझते जिनको
साथ बिठा उनको देखोगे
तो दस गुनी शक्ति अपने में
निश्चय बढ़ी हुई पाओगे।

कठपुतली

तकली–सी नाचे कठपुतली
छम छम छम छम छम छम छम
एक हाथ है सिर के ऊपर
हाथ दूसरा रखे कमर पर
लगा रही चक्कर पर चक्कर
जैसे लट्टू बीच सड़क पर
बंधी कमर में उसके सुतली
छम छम छम छम छम छम छम।
एक पाँव को इधर उठाये
पाँव दूसरा उधर बढ़ाये
एक आँख को इधर नचाये
आँख दूसरी उधर चलाये।
दिपती है बिजली–सी उजली
छम छम छम छम छम छम छम।
कभी थिरकती, कभी मचलती
कभी सँभलती, कभी फिसलती
कभी मटकती, कभी निरखती
हाव–भाव उसके अनगिनती।
ताल–ताल पर पूरी तुलती
छम छम छम छम छम छम छम।

हमारी आशाएँ

सुजीत सराफ

सन् १९४७ में जब अंग्रेज़ भारत छोड़ कर चले गए, तब भारत के लोगों में अपने नए देश के प्रति बहुत सी आशाएँ रही होंगी। इन आशाओं के कई कारण थे। दो शताब्दियों से भारत का स्वाभिमान बोझिल था। हमारी ऐतिहासिक बुद्धिमत्ता भी, जिस पर हमें गर्व था, अंग्रेज़ों द्वारा ही खोजी और समझाई गई थी। किन्तु द्वितीय महायुद्ध में, शुरूआत में, जब अंग्रेज़ों को हार झेलनी पड़ी, तब उनके बल का भ्रम भारतीयों के मन से उठ गया। गाँधी जी के सत्याग्रह ने सिर्फ अंग्रेज़ों को ही नीचा नहीं दिखाया, बल्कि भारतीयों में आत्मसम्मान पैदा किया। १९४७ में भारतीयों का यह मानना स्वाभाविक था कि एक आधुनिक भारत देश – जो नए ज़माने के विज्ञान को अपनी प्राचीन संस्कृति से मिलाकर दुनिया को एक अनोखा उदाहरण दिखाएगा – जन्म लेने वाला है। हम हर आँख का हर आँसू पोंछ देंगे, गाँधी ने कहा। आधी रात को जब दुनिया सो रही है, नेहरू ने कहा, एक देश की सोई हुई आत्मा जाग उठी है।

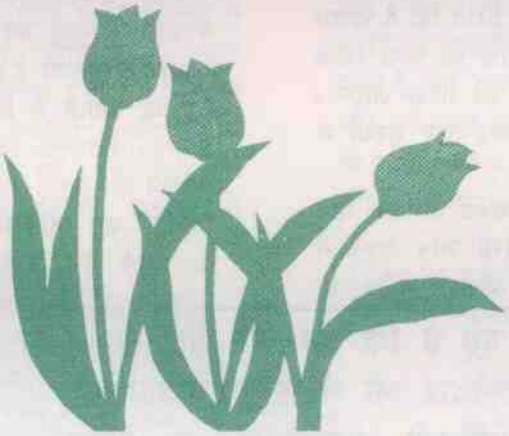

हमारी पीढ़ी ने वह भारत नहीं देखा। हमने उस पुराने आशावाद की महज़ कहानियाँ सुनी हैं, नेहरू के भाषण पर वाद–विवाद किया है, गाँधी के अभियानों के बारे में किताबों में पढ़ा है। किन्तु हमारा भारत हमारी आँखों के सामने है, और उसका यथार्थ इन ऊँचे सिद्धान्तों से इतना गिर गया है कि हमें अब वे बातें हास्यास्पद भी लगती है और लज्जाजनक भी। कैसा भारत, हम स्वयं से पूछते हैं? कैसा देश, और कौन सी आत्मा? कुछ ही वर्षों में विश्व का हर दूसरा निरक्षर व्यक्ति भारतीय होगा। क्या यही परिणाम है पचास साल की स्वाधीनता का? जिस देश के लोग किसी भी भाषा में लिखकर स्वयं को व्यक्त नहीं कर सकते, क्या उस देश की आत्मा जाग सकती है? भूखे, निरक्षर लोग क्या प्रजातन्त्र में हिस्सा ले सकते हैं, अपने अधिकारों की रक्षा कर सकते हैं? कैसा भारत, हम स्वयं से पूछते हैं?

शायद यह कहना अनुचित नहीं कि पिछली पीढ़ियों ने अपना उत्तरदायित्व नहीं निभाया है। उन्होंने हमें अपनी सफलताओं की कहानियाँ ज़रूर सुनाई हैं। वे आजादी की बातें करती हैं, इस्पात उत्पादन, बिजली उत्पादन, परमाणु बम और "नॉन अलाइन्ड मूवमेण्ट" की। किन्तु पचास साल बाद वे हर भारतीय को पेट भर खाना और साधारण सी शिक्षा तक न दे पाए। शायद यही उनकी असफलता है। किन्तु इससे भी महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि हम क्या कर सकते हैं? हमारे वर्तमान का ज़िम्मेदार जो भी हो – ऐतिहासिक संयोग, अंग्रेज़ सरकार, पश्चिमी उदासीनता, या भारत सरकार के उलझे विचार – अपने भविष्य के लिए हम क्या कर सकते हैं?

यह प्रश्न अमरीका में पढ़ रहे कुछ भारतीय छात्रों ने अपने बीच उठाया। उन्होंने पूछा – क्या हम भारतीय साक्षरता के लिए कुछ कर सकते हैं? हमारे पास भारतीय सत्ता नहीं। हम सरकारी तौर पर साक्षरता को अपना उद्देश्य बनाकर अभियान नहीं चला सकते। वर्तमान सरकार की क्षमता पर भी हमें गहरा विश्वास नहीं है। समस्या के स्थाई निदान के लिए हमें शायद स्वयं सरकार बनानी पड़ेगी, राजनीति में भाग लेना पड़ेगा। किन्तु इस समय, अमरीका में

भारतीय विद्यार्थियों की हैसियत से हम क्या कर सकते हैं? भारत में कई गैर सरकारी संस्थाएँ शिक्षा देने के कार्यों में लगी हुई हैं। क्या हम इन संस्थाओं की मदद नहीं कर सकते?

हमें अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया, और इस तरह "आशा" ने जन्म लिया। "आशा" नाम की संस्था की स्थापना चार साल पहले युनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, बर्कली में कुछ छात्रों ने किया। उनका उद्देश्य था भारत की गैर सरकारी संस्थाओं की सहायता करना, भारतीय साक्षरता के अमसीका में लोगों को जागरूक करना, अनुकूल उद्देश्यों वाली दूसरी संस्थाओं के साथ काम करना, और बच्चों को किताबी शिक्षा के साथ-साथ व्यावहारिक ज्ञान देना। "आशा" के सदस्यों ने यह निर्णय लिया कि वे संस्था के चलाने का खर्च स्वयं देंगे, जिससे कि जमा किया हुआ सारा पैसा भारतीय साक्षरता की तरफ जाएगा। सारे सदस्य स्वेच्छा से, बिना तनख्वाह लिए संस्था के लिए काम करेंगे।

बर्कली में "आशा" की स्थापना होने के बाद कई युनिवर्सिटियों के छात्रों ने ऐसा काम करने में रूचि दिखाई। चार सालों में "आशा" करीब १५

इससे भी महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि हम क्या कर सकते हैं? हमारे वर्तमान का ज़िम्मेदार जो भी हो - ऐतिहासिक संयोग, अंग्रेज़ सरकार, पश्चिमी उदासीनता, या भारत सरकार के उलझे विचार - अपने भविष्य के लिए हम क्या कर सकते हैं?

कॉलेजों के कैम्पस पर संस्थापित हो चुकी है, जो अमरीका में चारों तरफ फैले हुए हैं। अब तक, कुल मिलाकर इन "चैप्टरों" ने हज़ारों डॉलर इकट्ठे कर भारत में हज़ारों बच्चों को शिक्षा दी है।

"आशा" का पैसे वितरित करने का एक नियमित तरीका है। भारत में काम कर रही गैर सरकारी संस्थाएँ हमें अपनी गतिविधियों के बारे में विस्तार से बताती हैं। वे हमें खर्चे के अनुमान भेजती हैं। यह बताती है कि पैसा किस तरह खर्च किया जाएगा। उदाहरण-स्वरूप : ५० मेज़ें, ५० कुर्सियाँ, दो शिक्षकों का वेतन, पेन और पेंसिल के खर्चे, इत्यादि। "आशा" उन गतिविधियों का अध्ययन कर उन्हें हर छः महीने पैसे भेजती हैं, और वे उन पैसों का उपयोग कर के "आशा" को एक टिप्पणी भेजते हैं। जब आशा के सदस्य - जिनमें अधिकांश भारतीय छात्र और इन्जीनियर आदि हैं - अपनी छुट्टियों में भारत जाते हैं, तो वे किसी न किसी संस्था का स्वयं निरीक्षण करते हैं। वे देखते हैं कि पैसे का सदुपयोग हो रहा है या नहीं। वे बच्चों और अध्यापकों और कार्यकर्ताओं से बात करते हैं, और लौटकर अपने विचार "आशा" के सदस्यों में बाँटते हैं। फिर "आशा" के सदस्य यह निर्णय लेते हैं कि उस संस्था को मदद मिलती रहनी चाहिए या नहीं।

इस समय "आशा" कई संस्थाओं की मदद कर रही है, जिनमें दो हैं : सोसाइटी फॉर द अपलिफ्टमेण्ट ऑफ द रूरल पूअर, और प्रसन्न ज्योति ट्रस्ट। पहली संस्था विधवा और ठुकराई हुई औरतों के लिए छोटे व्यवसाय जुटाती है, ताकि उनके बच्चों को शिक्षा मिल सके। तमिलनाडु में तिरूवन्नमलाई में "आशा" की मदद से नौ औरतों ने छोटे व्यवसाय खोले। प्रसन्न ज्योति ट्रस्ट अनाथ बच्चियों को रहने, खाने की सुविधा देता है और उन्हें शिक्षा देता है। बंगलौर में पच्चीस लड़कियों की देशभाल "आशा" की मदद से हुई। इसी तरह की कई संस्थाएँ "आशा" से जुड़ी हुई हैं। "आशा" के सारे "चैप्टरों" की गतिविधियों का विश्लेषण "वर्ल्ड वाइड वेब" पर भी मिल सकता है : www-leland.stanford.edu/group/asha

भारत का भविष्य भारतीयों के हाथ में है। जब तक हम स्वयं अपने भविष्य का निर्माण नहीं करेंगे, उसके उज्ज्वल होने की सम्भावना नहीं। "आशा" के माध्यम से हमने इस लम्बी यात्रा का पहला कदम उठाया है।

पैसे जमा करने के लिए "आशा" लोगों से चन्दा माँगती है, मग, कप, टी-शर्ट और कार्ड, कैलेण्डर आदि बेचती हैं, और सांस्कृतिक जलसों का आयोजन करती है। अमरीका की कुछ कम्पनियाँ भी "आशा" की मदद करती हैं।"आशा" का यह उद्देश्य है कि उसका अभियान देश-विदेश में फैले, दुनिया भर के भारतीय और गैर भारतीय भारत को शत-प्रतिशत साक्षर बनाने में सहयोग दें। जिन लोगों की "आशा" में रूचि है, जो "आशा में अपना योगदान देना चाहते हैं, और जो स्वयं अपनी कॉलेज या कम्पनी में "आशा" की स्थापना करना चाहते हैं, "आशा" के सदस्य सहर्ष उनकी सहायता करेंगे। इस बारे में अधिक जानकारी पत्र-व्यवहार या ई-मेल से ली जा सकती है। कृपया सुजीत सराफ से सम्पर्क करें (२१५० ऑक्सफोर्ड स्ट्रीट, रूम २बी, बर्कली, कैलिफोर्निया ९४७०४, संयुक्त राज्य अमेरिका) या ई मेल भेजें : saraf@euler.berkeley.edu

भारत का भविष्य भारतीयों के हाथ में है। जब तक हम स्वयं अपने भविष्य का निर्माण नहीं करेंगे, उसके उज्ज्वल होने की सम्भावना नहीं। "आशा" के माध्यम से हमने इस लम्बी यात्रा का पहला कदम उठाया है। हमारा यह स्वप्न है कि "आशा" विश्व भर में, और भारत में फैलकर भारतीय साक्षरता को सत्य बना देगी, और इस कार्य में सब हमारा साथ देंगे।

वर्षांत और वर्षारंभ

मिवाको कोएजुका

जब कड़ाके की ठंड असर करने लगती थी और काली रात दानव रूप धारण करती दिखाई देने लगती थी, तब वर्ष का अंत होता था, अमावस्या को, जब चंद्र तिथिपत्र चलता था।

मेइजी आधुनिक सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय समाज में प्रवेश का नारा लगाते हुए स्थापना के पाँचवें वर्ष, १२वें महीने की ३ तारीख को अपने अधिकार से पहली जनवरी सन् १८७३ ईसवी कर लिया था। पर्व, मौसम, फल, फूल और उपज आदि में परस्पर संबंध, तब से ज़रा ढीला चला आ रहा है।

खैर, नये वर्ष का आगमन किसे बुरा लगता होगा। नये वर्ष के दिन, वर्ष-देवता घर घर आ जाता है। लोगों की आयु में एक एक वर्ष के लिये वृद्धि करता है। नव वर्ष दिवस पर दीर्घायु होने का गौरव अनुभव किया जाता है।

मगर नए वर्ष के स्वागत की तैयारी जहाँ नहीं होती, वहाँ वह कैसे आ विराजे। यही कारण है कि लोक कथाओं में गरीबी की पीड़ाजनक हद इन शब्दों में होती है कि नव वर्ष दिवस की तैयारी के लिये बेचारे के पास चावल नहीं है। उधार ले आना भी नहीं हो पा रहा है।

नव वर्ष दिवस, जापानियों का सर्वाधिक महत्व का पर्व होता चला आ रहा है। किस तिथि पर भी होगा, वह समूचे वर्ष के सुख-दुख का प्रतीक माना जाता है। ठीक उस तरह जिस तरह कि भारत में भी नव संवत्सर की प्रतिपदा को अनुभव होता है।

भारत में वर्षारंभ चैत्र शुक्ल की प्रतिपदा को होता है, मगर पढ़ने में आता है कि कहीं कहीं मार्गशीर्ष, कार्तिक या फाल्गुन में भी होता था। जापान में चंद्र तिथिपत्र के अनुसार पहले महीने की पहली तिथि, फाल्गुन शुल्क की प्रतिपदा को पड़ती थी, पड़ती है। वैसे अब नव वर्ष दिवस की खुशी पहली जनवरी को मनाई जाती है।

सुनती हूँ कि कार्तिक मास में अमावस्या की रात वर्ष की सबसे काली रात होती है। और उसी रात को मनाई जाने वाली दीपावली, यों तो नव वर्ष है। दीपावली से पहले कार्तिक मास की १३वीं तिथि को धनतेरस है, जिसमें स्वास्थ्य की कामना में घर आंगन की सफाई की जाती है।

रोचक बात यह है कि नव वर्ष दिवस की तैयारी का विधिवत् शुभारंभ, १२वें महीने की १३वीं तिथि पर होता था। अब भी कहीं कहीं

१३ दिसम्बर को यह तैयारी शुरू की जाती है। वैसे धनतेरस कृष्ण पक्ष की १३वीं तिथि को है जबकि जापान में नव वर्ष के स्वागत की विधिवत् तैयारी शुक्ल पक्ष की १३वीं तिथि को होती थी। और जापानी चंद्र तिथिपत्र में महीना शुक्ल पक्ष से शुरू होता है। कृष्ण पक्ष से नहीं। और तैयारी की प्राथमिकता सफाई को दी जाती है। वर्ष भर की मैल गंदगी से मुक्ति पाना है, दो दिन में यह काम पूरा नहीं किया जा सकेगा।

प्रवेश द्वार पर सजाने के लिये चीड़ वृक्ष की टहनी को वन से काट लाना भी १२वें महीने की १३वीं तिथि को सम्पन्न किया जाता आ रहा था। कहीं कहीं दूसरी किस्म का पेड़ भी काम में लाया जाता था जिसे ३० दिसम्बर को तो हर हालत में खड़ा किया जाना होता था। और पेड़ की टहनी के माध्यम से नव वर्ष के देवता का घर पर आगमन हो सकता है। मतलब है कि वर्ष–देवता, दूर से मगर ऊँचाई से आता है। उस वर्ष–देवता का स्वागत बन्दनवार जैसी पुआल की रस्सी सजा कर किया जाता है। यह रस्सी स्वच्छता का, पवित्रता का प्रतीक है।

वर्ष–देवता के लिए चढ़ावे में चावल को भाप से पका कर कूटते हुऐ तैयारी की जाने वाली "मोचि" का होना आवश्यक है। गरीब से गरीब लोग भी कम से कम "मोचि" तो तैयार करते थे। अर्थात् जापान का प्रधान पर्व, धान की खेती के साथ गहरा संबंध रखता है। "मोचि" के साथ चावल से तैयार शराब "सके", सामन मछली या यैलोटेल मछली, और फिर सब्जियाँ चढ़ावे की चीज़ें होती हैं और ये वर्षारंभ का विशिष्ट बनती हैं।

वर्ष के अंतिम दिन आधी रात को बौद्ध मंदिरों में १०८ बार घंटा बजाया जाता है। कहते हैं कि बीते वर्ष की घटनाओं के लिये क्षमा याचना भी करनी होती है, मैल गंदगी से मुक्ति भी पानी होती है। तो भी दिन के समाप्त होने और शुरू होने का सीमा–समय, सैंकड़ों वर्षों से संध्या हुआ करती थी। तभी यह बात भी कही जाती है कि नए वर्ष में आकर ही १०८ बार घंटे का स्वर सुनना, वर्ष–देवता की शक्ति को शरीर में पूरी तरह भरना होता है और इस प्रकार आयु में वृद्धि भी होती है।

दीपावली में खाता नया किया जाता है। जापान में भी वर्ष के समाप्त होने तक लेखा जोखा साफ करना होता आया है। इसमें समुद्र, वन और खेत की तरह तरह की चीज़ें पकाई जाती हैं। ये चीज़ें नव वर्ष के दिनों में खायी जाएंगी। मगर हाँ, नव वर्ष के तीन दिन में अनेक लोग वर्ष की पहली प्रार्थना के लिए निकलते हैं।

शायद मैं तब ३–४ वर्ष की रही हूँगी, याद आता है कि बड़ी वाली दीदी स्कूल से घर लौट कर माँ को बताने लगी थीं। उनकी एक सहेली ज़रा मन्द बुद्धि की समझी जाती थी। दीदी का कहना था कि वह स्कूल में एक प्रश्न का यह उत्तर देने लगी थी : "जी, ३१ दिसम्बर के बाद ३२ दिसम्बर आता है।" मेरी माँ ने उस लड़की की बड़ी प्रशंसा की।" उसका कहना बिल्कुल सही है।"

वस्तुतः दिन दिन एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। ३१ दिसम्बर वाली चूल्हे की आँच से पहली जनवरी का पहला भोजन तैयार किया जाना होगा। ३१ दिसम्बर की रात को भोजन में मोटे अनाज "सोबा" का नूडल खाने का रिवाज़ चला आ रहा है। नूडल पतला होता है मगर वह लम्बा भी है। आज वाला प्राणी, अगले दिन भी बना रहेगा। इस वर्ष वाला जीवन नए वर्ष में भी जारी रहेगा।

जापानी चंद्र तिथिपत्र में महीना शुक्ल पक्ष से शुरू होता है। कृष्ण पक्ष से नहीं।

ऋतुराज वसंत

डॉ. शशि तिवारी

प्रत्येक भारतवासी के पास अपने देश पर गर्व करने योग्य कई बातें हैं, जैसे – हमारी परम्पराएँ, संस्कृति, आदर्श, साहित्य, महापुरुष, भौगोलिक सम्पदा और प्रकृति। प्रकृति का मनुष्य से अटूट सम्बन्ध है। मनुष्य की सोच–समझ भी प्राकृतिक वातावरण से प्रभावित होती है। भारत एक सौभाग्यशाली देश है जिसमें सब प्रकार के भौगोलिक स्थल और सब प्रकार के मौसम प्राप्त हैं। प्राकृतिक दृश्यों और ऋतुओं की विविधता देश की बहुत बड़ी समृद्धि है। भारत के अधिकांश लोग एक ही स्थान पर रहते हुए वर्ष भर में एक के बाद एक छह ऋतुओं का आनन्द उठा सकते हैं। इन छह ऋतुओं का क्रम है – वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर।

ज्योतिष–गणना में प्रत्येक ऋतु को दो–दो मास दिए गए हैं। चैत्र और वैशाख – वसन्त के दो मास हैं। भारतीय वर्ष का प्रारम्भ चैत्र मास से होता है और अन्त फागुन मास से। फागुन के अन्तिम दिन पूर्णमासी पर होली खेली जाती है। होली पर्व वर्ष की समाप्ति और नये वर्ष के आगमन की खुशी में मनाया जाता है। होली का प्राचीन नाम 'वसन्तोत्सव' है। इस दिन सब मिलकर रंगों से खेलते हैं।

शिशिर ऋतु समाप्त होते–होते मौसम सुहावना होने लगता है। प्रकृति का हर दृश्य मनोहर हो जाता है। मन बरबस प्रकृति की सुन्दरता पर मुग्ध होने लगता है। बाग–बगीचे फूलों से महक उठते हैं। सरसों के खेत पीली चुनरिया ओढ़ सज उठते हैं। आम के पेड़ों पर मंजरी आ जाती है। कोयल की मधुर कूक सुनाई पड़ने लगती है। आकाश निर्मल हो जाता है। वायु शीतल और सुगन्धित हो जाती है। जल सुखद और मधुर लगने लगता है। वसन्त ऋतु चैत्र मास में अपने पूरे रूप में दिखाई देती है, परन्तु उससे लगभग चालीस दिन पहले शिशिर ऋतु के बीच में ही

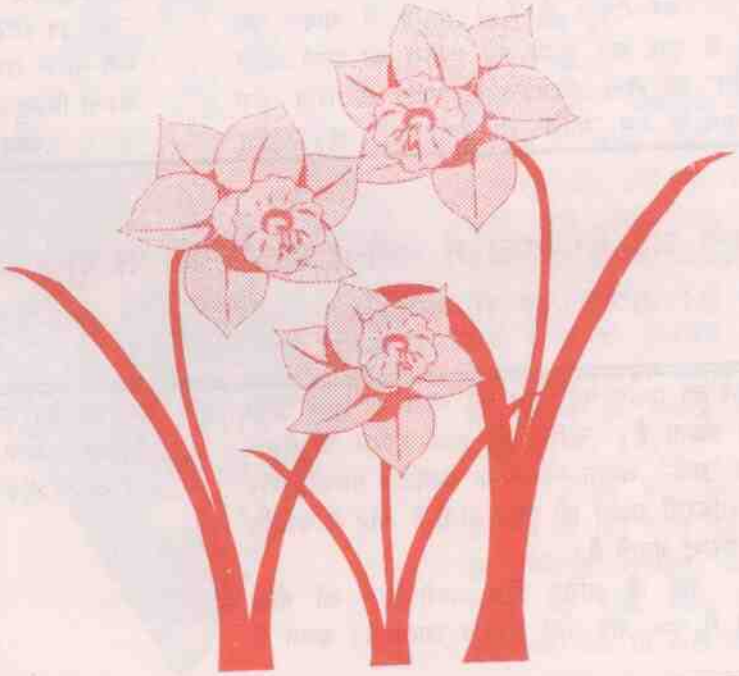

'वसन्त पंचमी' आती है। माघ मास की शुक्ला पंचमी को वसन्त पंचमी कहते हैं। इस दिन वास्तव में वसन्त के आगमन का उत्सव किया जाता है।

वसन्त ऋतुओं का राजा है, यानी ऋतुराज। जैसे कोई बड़ा और महत्वपूर्ण व्यक्ति आने वाला होता है, तो उसके आगमन की तैयारी पहले से शुरु कर दी जाती है, उसी तरह ऋतुराज वसन्त के आने की खुशी में पहला उत्सव वसन्तपंचमी पर किया है। वसन्तपंचमी वसन्त ऋतु के चालीस दिन पहले क्यों होती है? – इसको लेकर एक कथा कही जाती है। एक बार सभी ऋतुओं ने अपने राजा के अभिनन्दन का विचार किया। स्वागत में कुछ न कुछ भेंट देते ही हैं। हर ऋतु ने अपने अपने हिस्से के आठ–आठ दिन वसन्त को उपहार में दिए। इस प्रकार पाँच ऋतुओं से कुल मिलाकर चालीस दिन वसन्त को अतिरिक्त मिल गए। तभी से माघ मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी, वसन्त–पंचमी हो गई; यानी वसन्त के आगमन के अभिनन्दन की तिथि।

वसन्त को ऋतुओं का राजा पद ऐसे ही नहीं मिल गया है। कृषि और किसान की खुशहाली इस समय चरम सीमा पर होती है – गेहूँ, चना, अरहर, मटर, सरसों, गन्ना आदि खेतों में फूलने और पकने लगता है। वसन्त में फलों का राजा 'आम' अपने आने की सूचना बौरों से देता है। कोयल उसे देखकर मस्त हो जाती है। वनों में मोर नाचने लगते हैं। पशु–पक्षी सभी आनन्द में झूम–झूम जाते हैं। कमल, गेंदा, गुलाब, चम्पा, चमेली, कचनार के फूल अपनी रंग बिरंगी आभा और मनमोहक सुगन्ध से वन–उपवन को सुन्दर और सुवासित कर देते हैं। वसन्त के आने से सर्दी के कारण क्षीण हुई प्राकृतिक सुषमा वापस आ जाती है। जन जन गा उठता है –

'मनभावन वसन्त सखी आयो री,
आज कण कण में यौवन छायो री।'

वसन्त ऋतु विद्यार्जन का उनम काल है इसीलिए वसन्त–पंचमी पर विद्या की देवी सरस्वती की पूजा की जाती है। स्वास्थ्य के लिए भी यह समय उनम माना जाता है। तभी कहा गया है – 'वसन्ते भ्रमणं पथ्यम्' अर्थात् वसन्त ऋतु में घूमना ही रोगों को दूर करता है। जब सौन्दर्य, समृद्धि, विद्या, स्वास्थ्य और प्रसन्नता से वसन्त का सम्बन्ध है, तो फिर सच ही वह ऋतुराज क्यों न कहलाए ?

নিবেদন

অর্থ, যশ, খ্যাতি ইত্যাদি পাওয়ার আশায় অনেক বাঙালী, জীবনের কিছুটা অংশ বিদেশে বসবাস করেন। বিদেশে (বিশেষত: জাপানে) সুখ সাচ্ছন্দ্য যতটা আছে ততটাই আছে যান্ত্রিক জীবনের পৌনঃপুনিকতার অবসাদ। উন্নত দেশগুলিতে উদয়াস্ত চলেছে যেন এক বিরামহীন কর্মযজ্ঞ। আর সেই কর্মযজ্ঞে সামিল হয়ে আমরাও ছুটে চলেছি এক অনিশ্চিত লক্ষে। মাঝে মাঝে বিদ্রোহী হয়ে ওঠে মন, বেরিয়ে আসতে চায় গতানুগতিকতার আবর্ত থেকে।

যদিও রুটীন মাফিক জীবন থেকে বেরিয়ে আসার সুবিধে বড় একটা নেই তবুও যতটুকু সময় পাওয়া যায়, সেই সময়টুকুকেও যদি নিজের ভালো লাগার কাজে ব্যয় করা যায় তবে কিছুটা ভিন্ন স্বাদের উপলব্ধি হয়। আমার দেখা অধিকাংশ প্রবাসীর ক্ষেত্রে বছরে দু একটা অনুষ্ঠানের মধ্যেই এই ব্যাতিক্রমী জীবন সীমাবদ্ধ। কানতোঁও অঞ্চলে এখন নিয়মিত স্বরস্বতী পূজা এবং দূর্গাপূজার আয়োজন হচ্ছে। এছাড়া উৎসাহী জাপানী বন্ধুদের উদ্যোগে পঁচিশে বৈশাখও পালন করা হয়। এইসব অনুষ্ঠানের আয়োজনের মধ্যে দিয়ে মনটা অবশ্যই ছুটি পায় ক্লান্তির হাত থেকে। কিছুটা সময় কোথা দিয়ে কেটে যায় তার হিসেব থাকেনা। কিন্তু আবার শুরু হয় সেই গতানুগতিক জীবন। জমা হতে থাকে অবসাদ। অপেক্ষা শুরু হয় পরবর্ত্তী আকর্ষণের। ভালো লাগার মুহুর্তকে ধরে রাখতে সকলেই চায়। ক্ষণস্থায়ী ভালো লাগার উপায় অপেক্ষাকৃত সহজ, কিন্তু দীর্ঘস্থায়ী আনন্দের উপায় - সে কি সহজ? ব্যক্তি ভেদে আনন্দের উপায় এবং তার প্রকাশ ভিন্ন। কারো ভালো লাগে দেশ বিদেশ ঘুরে বেড়িয়ে, কারো ভালো লাগে বই পড়ে জ্ঞান অর্জন করে, কারো বা ভালো লাগে জনহিতকর কাজকর্মে।

সে যাই হোক, যে কথার প্রসঙ্গে এত কথার অবতারণা, তা হোল উপস্থিত জাপানে প্রবাসী বাঙালীরা, বা যাঁরা এখন জাপান ছেড়ে চলে গিয়েছেন তাঁদের সকলের কাছে এই প্রস্তাব রাখছি যে জাপান ভারতীর বাঙালা বিভাগকে নিজেদের সাংস্কৃতিক জীবনের সীমাবদ্ধতার হাত থেকে মুক্তির উপায় হিসাবে ব্যবহার করুন। মানুষের শেখার কোনও অন্ত নেই। ঠাকুরের ভাষায়, 'যাবৎ বাঁচি, তাবৎ শিখি'। তাই প্রতিনিয়ত আমরা কত কিছু শিখছি, জানছি। আমরা সকলে জাপান সম্বন্ধে প্রতিদিন যে জ্ঞান অর্জন করছি তা হোল first hand । জাপান ভারতীর মাধ্যমে সেই জ্ঞান যদি সকলের কাছে পৌঁছে দেওয়া যায় তবে কেউ না কেউ নিশ্চয়ই উপকৃত হবেন।

প্রতিবারই নিবেদন লিখতে বসে শেষ পর্যন্ত বিষয়বস্তু হয়ে দাঁড়ায় আবেদনে। এবারও তার কোনো পরিবর্তন করা গেল না। ১৯৯৬ সালের জাপান ভারতীর এটাই প্রথম সংখ্যা। তাই শুভ নববর্ষে সকলকে জানাই আমার আন্তরিক শুভেচ্ছা। আশা রাখি জাপান ভারতী, আপনাদের সহযোগিতা লাভ করে উত্তরোত্তর সমৃদ্ধ হবে।

- রঞ্জন গুপ্ত

এই না হলে জাপান

দেখতে দেখতে একটা বছর কেটে গেলো। পাতা ঝরেছে, ফুল ফুটেছে - নদীতে বয়ে গেছে অনেক জল। সেই জলের স্রোতে মিশে আছে হানসিনের ভূমিকম্প। দুর্গতদের পুনর্বাসন এখনও শেষ হয় নি। যদিও জনজীবন মোটামুটি স্বাভাবিক।

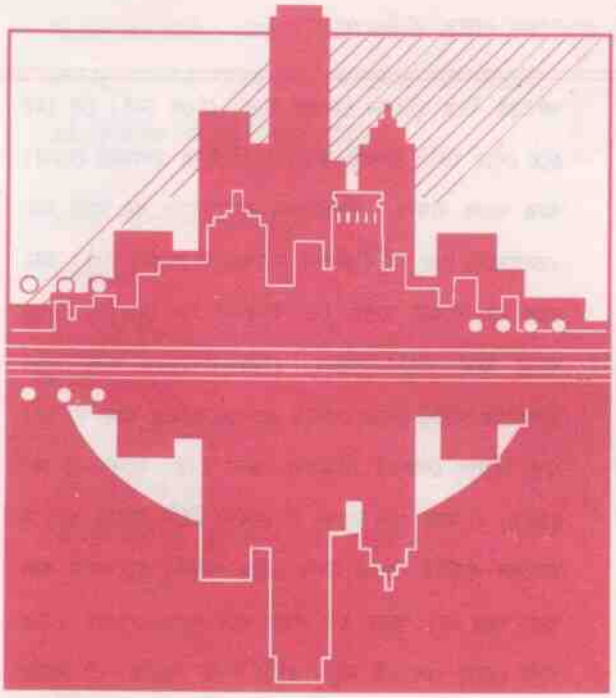

ছেঁড়া তার জোড়া লেগেছে - জল, বিজলী, গ্যাস আগের অবস্থায় ফিরে এসেছে। রেল চলাচল শুরু হয়েছে। কোবের আন্তর্জাতিক বন্দরে জাহাজ আসাযাওয়া করছে। অবশ্য, 'সেই-সিন' হাইওয়ের কাজ এখনও শেষ হয় নি। এরই ভেঙে পড়া ছবি দেশ বিদেশে শিহরণ এনেছিল। এদেশের লোকেরা বলেছেন - যে পরিমান ক্ষয় ক্ষতি হয়েছে তার তুলনায় পুনর্গঠনের কাজ তেমন তাড়াতাড়ি হয় নি। তবে আমাদের দেশের তো বটেই, এমনকি আন্তর্জাতিক মানের তুলনায় জাপানিরা বেশ তাড়াতাড়িই সব কিছু গড়ে তুলতে পেরেছে। যেখানে কিছু ঘাটতি সেটা ঐ সাধারনের বাড়ি তৈরীর জায়গায়। কর্তৃপক্ষ শহরের নকশাকে ঢেলে সাজাতে চান। নতুন পরিকল্পনা - নতুন ছবি - এসবের বেড়া কাটিয়ে ওঠা সহজ নয়।

আরেকটা কথা, এই ভূমিকম্প জাপানিদের অহংকারে মস্ত আঘাত হেনেছে। খুব বড়াই করে এরা বলতো - আমাদের ভূমিকম্পের দেশ - হোক্কাইদো থেকে ওকিনাওয়া পর্যন্ত যখন তখন দোদুল দোলায় দুলছে - বাড়ী ঘর তাই এমন করে তৈরী করি, যাতে সহজে ভেঙে না পড়ে। বড় বড় ব্রিজ, হাইওয়ে, ভূমিকম্পের প্রতিষেধক সহ বিজ্ঞান সম্মত উপায়ে তৈরী করা। আকাশ চাটা দালান এদিক ওদিক নড়বে কিন্তু ভেঙে পড়বে না। ওদের বড় মুখে কালি ছিটিয়ে অন্তর্যামী ১৯৯৫ এর ১৭-ই জানুয়ারীর ভোর রাতে প্রলয়ঙ্করী ঝাঁকুনি দিয়ে আগুন লাগিয়ে দিলে। এতদিন বলা হয়েছে বড় কাঁপন আসবে ঐদিকে - তোকিয়োকে মাঝে রেখে কান্তো অঞ্চলে। ১৯২৩-এর পুনরাবৃত্তির সময় এসেছে। যে কোনো দিন, যে কোনো সময়। হানসিনে ভয় নেই। ওটা ভূমিকম্পের এলাকা নয়। এখন? এখন তাঁরাই বলছেন - হ্যাঁ ওদিকে একটা জিওলজিক্যাল ফল্ট আছে বটে - সে আবার দেড় হাজার বছর বাদে বাদে মাথা চাড়া দিয়ে ওঠে। ঠিক দেড় হাজার বছর আগে এমনি হয়ে ছিল, কাজেই পরের দেড় হাজার বছরের জন্য নিশ্চিন্ত থাকা যায় - ভয় নেই। আহা! আশ্বাস বাণী শুনে প্রাণ জুড়িয়ে গেল। এই না হলে জাপানি!

হেঁসেল থেকে

কথায় বলে মাছের রাজা রুই আর শাকের রাজা পালং। শাক যে আমাদের প্রাত্যহিক খাদ্য তালিকার একটি অন্যতম উপাদান তা আমরা কে না জানি। আর এই শাকের রাজার পুষ্টিগত মান সম্পর্কেও আমরা সচেতন। পালং দিয়ে নানা রকমের রান্না - ভাজা, ঘন্ট, পালং পনীর, মীট পালং এসব তো আমরা অনেক সময়ই করে থাকি। আজকে এমন একটি .বান্নার কথা বলি যাতে পালং শাকের গুণ নষ্ট হয়না এবং সহজেই এই উপাদেয় পদ তৈরী করা সম্ভব।

পদ - পালংয়ের রায়তা

উপকরণ

৫০ গ্রাম টুকরো করা পালং শাক

২৫০ গ্রাম দই

১/২ চা চামচ লঙ্কার গুঁড়ো

১/২ চা চামচ চিনি

আন্দাজমত নূন ও গোলমরিচের গুঁড়ো

২ চামচ তেল

১/২ চা চামচ জিরে

১/২ চা চামচ সর্ষে

এক কোয়া রসুন বাটা

১/২ চা চামচ আদা বাটা

৫০ গ্রাম টমাটো - টুকরো করে কাটা

রন্ধন প্রণালী

১. শাকের টুকরোগুলি একটি মুখ বন্ধ pan -এ অল্প আঁচে বসান। শাক নরম হয়ে গেলে নামিয়ে ঠান্ডা করুন।

২. দইয়ে নুন, গোলমরিচের গুঁড়ো ও চিনি দিয়ে ফেটিয়ে নিন। সেদ্ধ করা পালং এই দইতে মিশিয়ে দিন।

৩. তেল গরম করে সরষে ও জিরে ভেজে নিন। সরষে

ভাজা হলে রসুন ও আদা বাটা এই তেলে ভেজে নিন।

৪. দই ও পালং-এর মিশ্রণে এই মশলা সমেত তেলটি ঢেলে দিন।

৫. টোমাটোর টুকরো ও লঙ্কার গুঁড়ো উপরে ছড়িয়ে পরিবেশন করুন।

রীতা কর, ইয়োকোহামা

খাদক একাল

একালে ধরণী কাবু সওয়ারির ভারে
কারও নাম নেই নেমে যাবে পরপারে,
নতুন যাত্রী নিতে গেলে মাল্লারা
ঠেলে ফেলে দিতে চায় চ'ড়ে আছে যারা ।
সকলেরই সাধ, চিরায়ুষ্মান হতে
নিরবধিকাল ভাসতে কালের স্রোতে ।
ফলে সারাদিন মানুষ নামক প্রাণী
ত্রস্ত এযুগে নিয়ে দেহলতাখানি ।
প্রাণধারনেরই জন্য একালে শুনি
যৎসামান্য সেবন করেন গুণী ।
রাসায়নিকের নিক্তিতে মেপে মেপে
আহার সারেন চারবেলা সংক্ষেপে ।
দুধারের দাঁতে বার সত্তর ক'রে
চিবিয়ে গেলেন অসীম মনের জোরে ।
সচেষ্ট এঁরা আজীবন অবিরত
ভিটামিন খেতে যতটুকু সম্মত -
এবং অবেলা অখাদ্য কিছু লোভে
কখনও না খেতে, ভারে পাছে তরি ডোবে।
এর উপরেও চড়া আছে পর্বতে
নিদেন পক্ষে দৌড়ানো পথে পথে ।
তবুও এঁদের অন্তরে অন্তরে

নিত্য কোলেস্টেরল ঝামেলা করে ।
না দিয়েও চোখ ভুলেও গব্যঘৃতে
এরা বিচলিত ক্যালরির ভ্রুকুটিতে ।

আরও আছে কিছু যারা এর অন্যথা,
বাঁচতে নারাজ ভেবে এতোশত কথা ।
ত্রস্ত তারাও, তবু দুর্বল ক্ষণে
তির্যক চোখে তাকায় সঙ্গোপনে,
ধাবমান হয় আজও দুর্বার টানে
ভালোমন্দের সন্ধান পেলে ঘ্রাণে ।
তবে তারও দাম দেয় এরা প্রত্যেকে
আজ খেলে কাল রান্না বন্ধ রেখে ।
দুগ্ধের স্বাদ মেটায় আ-চিনি ঘোলে
কুক্কুট ছেড়ে টার্কি পাখীর ঝোলে ।

- ২ -

বাকি কিছু লোকে ঘুরছে আফিস পাড়া
সংবৎসর কখনও না পেয়ে ছাড়া ;
নিরুপায় হয়ে তারা যাতায়াত করে
রদ্দি মালের চটপট-খানা ঘরে*
তালশাস-পানা কটিতে চ্যাপ্টা গরু,
ফরাসি নামের আলুভাজা সরুসরু;
পনির বিছানো চাকতি জুড়েই পাতা
আধুলি মাপের শুয়োর, ব্যাঙের ছাতা
আর থেকে থেকে পানীয়ও মুখে তোলা
গাঢ় বেগুনিতে আবিষ্ট 'খোকা-গোলা' ।

এঁরা সকলেই শ্রদ্ধেয় তবু বলি
সম্ভব হলে এযুগ এড়িয়ে চলি ।

* বর্ণিত খাদ্যগুলির নাম Hamburger, French Fries ও Pizza ।
মার্কিন মুল্লুকের জনপ্রিয় রদ্দি খাবার ।

- কল্যাণ দাশগুপ্ত, ওহায়ো